हिन्दी विद्याभवन प्रकाशन-१

कहानी कला और उसका विकास

लेखक–

छविनाथ त्रिपाठी,

शास्त्री, साहित्यरत्न, शास्त्राचार्य (स्वर्णपदक प्राप्त)

संचालक—हिन्दी विद्या-भवन, देहरादून

प्रस्तावना लेखक :

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, काशी विश्वविद्यालय

साहित्य सदन देहरादून

प्रकाशक :
साहित्य सदन
देहरादून

प्रथम संस्करण :: अप्रैल १९५१
मूल्य ३)

मुद्रक :
सुमेधकुमार
भास्कर प्रेस,
देहरादून

प्रस्तावना

इस युग का सब से लोकप्रिय और प्रभावोत्पादक साहित्याङ्ग कहानी है। अनेक चोटी के विचारक अपने मत के प्रचार के लिये इस शक्तिशाली साहित्यांग का सहारा लेते हैं। वस्तुतः कहानी और उपन्यास आज के युग में जो इतने अधिक लोकप्रिय हुए हैं, उसका कारण लेखक का अपना निजी व्यक्तिगत मत ही है। यदि लेखक को अपने मत की सच्चाई में और अपने वक्तव्य की ईमानदारी में अति दृढ़ विश्वास न हो तो वह अच्छी कहानी लिख नहीं सकता। वैयक्तिक स्वाधीनता वाले युग का यह सर्वोत्तम और स्वस्थ साहित्यिक विकास है। घासलेटी उपन्यास या कहानी लेखक का न तो कोई निजी मत होता है और न अपने मत पर दृढ़ विश्वास ही होता है; इसी

लिये वह ललकारे जाने पर या तो भाग खड़ा होता है, या फिर विक्षुब्ध हो कर गाली-गलौज पर उतर आता है। वह रास्ते चलते आदमियों को सामने रख कर उनकी अत्यन्त आदिम मनोवृत्तियों को उकसाने के लिये कहानी लिखा करता है। अपने प्रचारित मत पर उसका विश्वास नहीं होता, इसी लिये वह आज तक संसार में कहीं भी जम कर खड़ा नहीं हो सका। जो जम कर खड़ा हो सके, उसमें कुछ दम होना चाहिये।

इस व्यक्तिगत मत को लोक-ग्राह्य बनाने के लिये कहानी लेखक कुछ कौशलों का आश्रय लेता है; उनका ज्ञान आवश्यक है। महत्वपूर्ण कहानी केवल अवसर-विनोदन का साधन नहीं है। उसके महत्वपूर्ण होने का कारण यह है कि उसकी नींव मजबूती के साथ उन वस्तुओं पर रखी हुई होती है. जो निरन्तर गम्भीर भाव से और निर्विवाद रूप से हमारी सामान्य मनुष्यता की कठिनाइयों को और द्वन्द्वों को प्रभावित करती हैं। हम कहानी लेखक के रचना कौशल, घटना-विन्यास की चतुराई, पात्रों के सहज स्वभाविक-विकास की सच्चाई और अपने निजी दृष्टिकोण की इमानदारी के कारण मनुष्यमात्र के साथ एकात्मता अनुभव करते हुये दूसरों के सुख-दुःख में अपनापन प्राप्त करते हैं और इस प्रकार हमारा हृदय संवेदनशील और मन उदार बनता है।

किस प्रकार चरित्र के भीतरी गुण उसे विकास की ओर अग्रसर करते हैं, किस प्रकार चरित्र और घटनायें एक दूसरे को ठेलती हुई स्वाभाविक गति से आगे चलती रहती हैं, और किस प्रकार लेखक का व्यक्तिगत मत अभिव्यक्त होता रहता है; यह जानने योग्य बात है। मनुष्य जीवन का यह एक अद्भुत

अभिशाप है कि जो चीज जितनी ही व्यापक-प्रभाव उत्पन्न करने वाली होती है उसे समझने में उतनी ही अधिक लापरवाही दिखाई जाती है। मध्य युग की सबसे प्रभावशाली वस्तु थी, धर्म; पर धर्म को जिस लापरवाही के साथ उस युग में व्यवहार में लाया गया है वह अन्य युगों में देखने को नहीं मिलती। इसी प्रकार कहानी भी इस युग में सबसे अधिक लिखी जाती है और बहुत अधिक लोकप्रिय भी है; तथापि उसके ठीक ठीक समझने का प्रयास कम से कम किया जाता है। जब तक इन बातों को ठीक ठीक न समझा जाय तब तक कहानी का रस नहीं लिया जा सकता। घटनाओं, पात्रों और उनके विकास की गति-विधि की जानकारी बहुत जरूरी है। इसके लिये विवेचनात्मक पुस्तकों की आवश्यकता है; "संग्रह लाभ न चिनु पहिचाने।"

मुझे यह देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि श्री छविनाथ त्रिपाठी जी ने इस विषय की एक पुस्तक लिखी है। श्री छविनाथ जी हिन्दी और संस्कृत के बहुत ही योग्य विद्वान हैं। उन्होंने पुराने और नवीन साहित्य का अच्छा अनुशीलन किया है। मैंने उनकी पुस्तक का कुछ अंश पढ़ा है। पुस्तक बहुत उपादेय हुई है। मुझे आशा है कि त्रिपाठी जी भविष्य में अन्य साहित्याङ्गों की भी विवेचना-पुस्तकें प्रकाशित करेंगे।

काशी विश्वविद्यालय
२६-३-५१

— हजारी प्रसाद द्विवेदी

दो शब्द

जीवन की अनन्त सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों का मर्म-स्पर्शी प्रकाशन ही कला है। प्रकाशन-शैली की अनेक विधता के कारण ही वह अनेक रूप-नाम वाली बनती है। उसमें भावना भी होती है और अभिव्यक्ति की चित्रमयता भी; दोनों की सुन्दर समन्विति ही कला की चरम सिद्धि है। कला का क्षेत्र जीवन है, अतः उसमें जीवन के किसी भी अंश की सत्ता का स्वरूप समाहित हो सकता है; कलाकार का व्यक्तित्व इसी कारण उसमें आभासित होता रहता है। आत्म-व्यापकता की अदम्य कामना, हार्दिक भावों एवं विचारों के विनिमय का मार्ग प्रशस्त करती है; कहानी कला इसका निर्विवाद एवं विश्वजनीन साधन है। वाणी की उपलब्धि से लेकर आज

तक मानव जाति ने निरन्तर इस सरल साधन को अभिव्यक्ति के लिये अपनाये रखा है, इसी के द्वारा उसने युग-भावना को वाणी दी है, आगत का स्वागत किया है और अतीत को सुरक्षित रखा है।

आज की कहानियां सर्वथा आधुनिक युग की देन समझी जाती हैं—शैली के नवीनतम चमकीले आवरण ने दृष्टि-भ्रम उत्पन्न कर दिया है और कहानी के अन्तःरूप का दर्शन कठिन हो गया है। वीर-गाथा काल से लेकर आज तक काव्य की अविच्छिन्न परम्परा गंगा-यमुना की निर्मल धारा की तरह प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है, किन्तु अन्तः सलिला सरस्वती की भाँति इस कहानी की धारा कुछ काल के लिए भू-लीन सी हो गई है। आधुनिक काल में साहित्य की यह वेगवती धारा पहाड़ी निर्झर की भांति पुनः व्यक्त हो कर गतिशील ही नहीं हो गई, अपितु उसने जन-जीवन के लिए अपना महत्व भी प्रदर्शित कर दिया है। पाश्चात्य साहित्य के विभिन्न प्रकार से पड़े प्रभावों ने न केवल उसकी दिशा में मोड़ उत्पन्न कर दिया है, वल्कि साथ ही उसके वाह्य रूप में ऐसा परिवर्तन भी कर दिया है, जिससे वह अपरिचित और अनजानी सी लगने लगी है। किन्तु हरिद्वार की गङ्गा का रूप गङ्गासागर की सहस्र-मुखी धाराओं में क्यों ढूँढा जाय ? 'कहानी का विकास' में एक सूत्रता का दर्शन आप अवश्य करेंगे।

आचार्य रामचन्द्र जी शुक्ल ने आधुनिक साहित्य के समस्त अङ्गों के विकास काल को प्रथम, द्वितीय और तृतीय उत्थान के नाम से अभिहित किया है। साहित्य के समन्वित विकास के लिए यह काल विभाजन ठीक हो सकता है, किन्तु

केवल कहानी के सम्बन्ध में यह विभाजन अर्ध-सत्य ही प्रतीत होता है। इन्दुमती और दुलाई वाली जैसी कहानियों के निर्माण तथा प्रसाद जी के आगमन के बीच का कुछ काल उत्कृष्ट श्रेणी की कहानियों से रिक्त दिखाई पड़ता है, अतः उक्त प्रथम काल को आधुनिक कहानियों का 'प्रयोग काल' कहना अधिक उचित है।

प्रसाद जी के बाद कहानी की अविच्छिन्न परम्परा आज तक चल रही है। इनकी प्रथम कहानी 'ग्राम' और प्रेमचन्द जी की प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' में कला तथा भाव, दोनों दृष्टियों से महान् अन्तर है; अतः प्रसाद जी से प्रथम उत्थान का आरम्भ और प्रेमचन्द जी से इस उत्थान का उत्तरार्ध काल माना गया है।

प्रगतिशील कहानी साहित्य की विशेषताओं की पूर्ण अभिव्यक्ति जैनेन्द्र और अज्ञेय आदि की कहानियों में ही दिखाई पड़ती है, अतः पूर्वार्द्ध के उन्नायकों में इन्हें सम्मिलित किया गया है। आधुनिकतम प्रवृत्ति समाजवादी यथार्थवाद की है; अतः अपनी कृतियों द्वारा यशपाल को ही उत्तरार्द्ध का नेतृत्व प्राप्त हुआ है। प्रवृत्तियों के आधार पर यह काल विभाजन समझने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होनी चाहिये। द्वितीय उत्थान के पूर्व तक के कहानीकारों का उल्लेख, उनकी सर्व प्रथम कहानी के प्रकाशित होने के समय के अनुसार ही क्रमशः किया गया है।

अपनी बात—

विद्या-भवन में साहित्यरत्न, एम० ए० आदि उच्च हिन्दी कक्षाओं को पढ़ाते समय प्रतिक्षण यह अनुभव होता था कि अब समय आ गया है जब कि साहित्य के विभिन्न अङ्गों पर ऐसी अलग-अलग पुस्तकें प्रकाशित होनी चाहियें, जिनमें मूल

तत्वों की विवेचना के साथ-साथ नवीनतम प्रवृत्तियों तक उनके विकास का परिचय उपलब्ध हो जाय। साहित्य के प्रत्येक अङ्ग के मूलतत्वों की पर्याप्त आलोचना गण्यमान्य आलोचकों ने की है; किन्तु उनकी सीमा छोटे-छोटे निबन्धों से आगे नहीं बढ़ सकी है और न तो विकासक्रम को ही साथ-साथ दिखलाया गया है। कहानी के सम्बन्ध में भी यही स्थिति है। मैंने अब से पूर्व प्रकाशित कहानी-कला से सम्बन्ध रखने वाले अनेकों निबन्धों एवं कतिपय ग्रन्थों को पढ़ा है और आवश्यकतानुसार कृतज्ञता पूर्वक उनसे बहुत कुछ लिया भी है।

विद्या-भवन के कार्यों में सर्वदा व्यस्त रहते हुये यह पुस्तक कैसे पूरी हो गई, इस पर मुझे स्वयं आश्चर्य है। किन्तु अब, जब कि पुस्तक समाप्त हो गई है, मुझे यह अनुभव हो रहा है कि साहित्य-सदन के व्यवस्थापक श्री सुरेन्द्रकुमार की अनवरत प्रेरणा, विद्या-भवन की सुयोग्य अध्यापिका सुमित्रादेवी जी के नवीन कहानीकारों के सम्बन्ध में सामग्री संकलन और साहित्य-रत्न की अध्ययनशील छात्राओं, सुश्री सरला और जनक कुमारी आदि के प्रतिलिपि तैयार करने की सहायता के अभाव में यह पुस्तक न जाने कब तक प्रकाश में आती। प्रख्यात समालोचक डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने कतिपय सुझाव देकर तथा स्वयं प्रस्तावना लिखकर, तथा डा० उदयनारायण तिवारी जी एम० ए०, डी० लिट्० एवं श्री गयाप्रसाद जी शुक्ल एम० ए० ने अपनी बहुमूल्य सम्मतियों द्वारा जो सहायता दी है, उसके लिये उक्त सभी महानुभावों का ऋणी हूं और उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

हिन्दी विद्या-भवन, देहरादून
नव-वर्ष-दिवस २००८

छविनाथ 'त्रिपाठी'

विषय-सूची

—कहानी कला—

—कहानी का विकास—

आरम्भ

कहानी का आरम्भ मानव सृष्टि के साथ ही हुआ है और उसका अन्त भी प्रलय के साथ ही होगा। आदि मानव, मनु और श्रद्धा की कहानी ही मानव जाति की कहानी है। प्रकृति और पुरुष दोनों ही उसके पात्र हैं। आज भी नवजात शिशु जबसे इस विशाल विश्व में पदार्पण करता है, तभी से वह जिज्ञासा के अनन्त सागर में डुबकियाँ लगाने लगता है। ऊषा की अरुणिमा, तपता हुआ सूर्य, सन्ध्या की लाली, टिमटिमाते तारे, निरभ्र आकाश में चमकता हुआ चाँद, सभी उसके सामने प्रश्न बनकर खड़े हो जाते हैं। उसके अन्तःकरण में जिज्ञासा की भावना पैदा होती है और वह माँ, दादी, नानी—किसी की भी गोद में बैठकर, प्रश्न पर प्रश्न करने लगता है। आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देखकर, उसका मन भी साथ साथ उड़ने लगता है। वह रात्रि में नानी की गोद में बैठा उड़न खटोले पर, कल्पित अज्ञात लोक में विचरण करने की कामना करता है। जिज्ञासा और कौतूहल की यह वृत्ति ही कहानी के जन्म का कारण बनती है।

आदिम युग के मनुष्यों को भी जीवन के लिये उतना ही संघर्ष करना पड़ा होगा जितना, आज के मनुष्यों को करना

पड़ता है। जीवन-संघर्ष के लिये किया गया प्रत्येक कार्य विभिन्न घटनाओं की सृष्टि करता है और वर्तमान की ये घटनाएं ही भविष्य के लिये जीवन की कहानी बन जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव और अपने अतीत जीवन की घटनाएँ दूसरों को सुनाना चाहता है। संवेदनशील हृदय दूसरों के सुख दुख की गाथाएं सुनना भी चाहता है। इसी वृत्त वर्णन में कहानी को मूर्त रूप मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन-क्षेत्र में, तीन वस्तुओं से अनुभूतियाँ ग्रहण करता है; वे है—वस्तु (दृश्य), व्यक्ति और घटना। इसलिये प्रत्येक वृत्त वर्णन मे इन्हीं तीनों का समावेश होता है। कहानी के लिये वक्ता और श्रोता दोनों ही अपेक्षित हैं। वक्त के लिये यह आवश्यक है कि अपनी कहानी को अधिक से अधिक प्रभाव-शाली और आकर्षक बना कर सुनाए। इसके लिये वह उसमें कल्पना का भी समावेश कर लेता है और कहने की शैली को भी सुन्दर बना लेता है। इस प्रकार वह अपने हृदयस्थित सम्पूर्ण उल्लास को, गहरी अनुभूतियों को, विचार, भावना और कल्पना को उंड़ेल कर श्रोता के सामने रख देता है।

यद्यपि मनुष्यता के विकास के साथ साथ कहानियों का रूप भी बदलता गया किन्तु मानव का कहानी प्रेम ज्यों का त्यों बना रहा। कहानी और मानव-जीवन का इतना अभिन्न सम्बन्ध है कि कहानी का विकास स्वयं एक मानव शिशु की विकासशील भावनाओं में उपलब्ध हो जाता है। विचित्र और आश्चर्यजनक वृत्तान्तों को सुनने और सुनाने तथा जीवन के रहस्यों और जगत् की वस्तुओं से परिचित होने की कामना

शिशु में अधिक उपलब्ध होती है। प्रारम्भिक युग की कहानियाँ इसी प्रकार की लिखी गईं। यौवन में वह कल्पनाशील अधिक हो उठता है; रहस्यमयी प्रकृति की रमणीयता, उसका निखरा सौन्दर्य और नारी के प्रति आकर्षण उसके जीवन में अभिव्यक्त होने लगते हैं। अपने द्वितीय उत्थान में कहानियां भी भावुकता से पूर्ण रहीं। प्रौढ़ावस्था, तर्क और चिन्तनशील प्रवृत्ति की परिचायक है। तृतीय काल की कहानियों में भी मनोविश्लेषण को प्रधानता प्राप्त हो गई।

"फिर क्या हुआ ?" की भावना, सभ्य और असभ्य सभी जातियों में समान रूप से पाई जाती है। जिन जातियों या भाषाओं का कोई साहित्य नहीं है, उनमें भी दन्तकथाएं प्रचलित हैं। साहित्य का एक सर्वाधिक लोकप्रिय अंग कहानी है क्योंकि इसका क्षेत्र-विस्तार, साहित्य के अतिरिक्त उन सम्पूर्ण असाहित्यिक बोलियों तक है जो मानव की भावाभिव्यक्ति के लिये किसी न किसी प्रकार साधन बनी हुई हैं। इस प्रकार कहानी की कहानी मानव के आदि काल से ही आरम्भ होती है और अपने अनेक परिवर्तनों और परिवर्धनों को पार करती हुई मानव के साथ ही समाप्त होगी। हिन्दी साहित्य में कहानी के आख्यायिका, गल्प, छोटी कथा (Short story) आदि कई नाम प्रचलित हैं।

उपादेयता—

प्राय: सभी बच्चे बड़ी बूढ़ियों के पास कहानी सुनने दौड़ पड़ते हैं। उनका एक मात्र उद्देश्य मनोरञ्जन होता है।

आधुनिक कहानी का मुख्य उद्देश्य भी मनोरञ्जन ही है। आज के इस वैज्ञानिक युग में जीवन के लिये अधिक संघर्ष करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन की कठोर वास्तविकता से ऊब कर किसी नए वातावरण में शान्ति की साँस लेना चाहता है। कुछ देर के लिये ही सही, वह जीवन के सुख-दुख से विरति चाहता है। दिन भर के नीरस कार्यों से थककर वह सरसता की आकांक्षा करता है। इस यथार्थवादी युग की शुष्क मरु-भूमि में उसकी कोमलतम वृत्तियों की प्यास और भी तीव्र हो उठती है। इस प्यास की शान्ति और विश्रान्ति का सरल साधन कहानी और उपन्यास के रूप में ही प्राप्त होता है। थोड़े समय में मन बहलाव का इतना सरल, सुलभ और रोचक साधन अन्य कोई भी नहीं है। एक सामान्य व्यक्ति भी सहज ही इस मनोरञ्जन को प्राप्त कर सकता है। किन्तु कहानी की लोकप्रियता उसके सस्तेपन और मनोरञ्जकता से ही नहीं है। उसमें आकर्षण है और है वह जीवन के समीप। जन्म और मृत्यु के दोनों किनारों को छूने वाली जीवन-सरिता की घटना लहरियों के चढ़ाव-उतार का अलग अलग इसमें चित्रण होता है। उसमें हृदय को आन्दोलित करने की अद्भुत क्षमता तो होती ही है, जीवन की परिचित एवं सामान्य घटना को इन्द्र-धनुष की रंगिनी के साथ अपरिचित बनाकर दृष्टिपथ में लाने की सामर्थ्य भी होती है। कोरा मनोरंजन न तो साहित्य का उद्देश्य है और न उसके सुन्दर अंग कहानी का ही। मनोरञ्जन के साथ साथ उसमें नवीन उत्साह और स्फूर्ति देने वाली दार्शनिक पृष्ठभूमि भी आवश्यक है।

कहानी भी अभिव्यक्ति का एक साधन है, इसलिए युग-परिवर्तन के साथ ही साथ उसके उद्देश्य और स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया। वातावरण, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियां प्रत्येक युग में साहित्य को प्रभावित करती है। इनके परिवर्तित होते ही साहित्य में भी युगान्तर उपस्थित हो जाता है। आरम्भ में नैतिक और धार्मिक सिद्धांतों के प्रचार के लिए कथायें लिखी जाती थीं; इनका उद्देश्य शिक्षा और उपदेश मात्र देना ही रहा। उनमें मानव जीवन की अनुभूतियों का वैसा चित्रण नहीं मिलता, जैसा आधुनिक कहानियों में उस समय तथ्य को हृदयङ्गम कराना ही कथाकारों का उद्देश्य था। आध्यात्मिक और पौराणिक कथाओं के अतिरिक्त जीव-जन्तुओं को प्रतीक बनाकर लिखी गई कहानियों का भी यही लक्ष्य था। बौद्ध युग में प्रचार के लिये भी इनका उपयोग किया गया। बाद में यात्रा, साहसकार्य, राजनीति और कूटनीति, छल-प्रपंच तथा लौकिक और व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा देने के लिए भी कथायें लिखी गई। जिस प्रकार प्राचीन और आधुनिक कहानी के वाह्य और अन्तः रूप में अन्तर हो गया है, उसी प्रकार उसके उद्देश्य और उपादेयता में भी। आधुनिक कहानी की मुख्य उपयोगिता मनोरंजन तो है ही, तथ्यों के विश्लेषण के अतिरिक्त मनोवेगों और अनुभूतियों का चित्रण भी है। अन्तः जगत की वृत्तियों के परिष्कार से लेकर समाज और देश की समस्याओं के चित्रण तथा उनके सुधार एवं विभिन्न राजनैतिक विचारों के प्रचार के लिए भी कहानियों का उपयोग किया जाता है।

परिभाषा—

कहानी साहित्य की एक विशिष्ट धारा है, जो गद्य में लिखी जाती है और जीवन की किसी एक घटना का चित्रण करती है। इसमें मानव-जीवन की अनन्त अनुभूतियों में से किसी एक का चित्रण किया जाता है। यह परिमाण, लक्ष्य, बनावट और शैली आदि प्रत्येक रूप में उपन्यास से सर्वथा भिन्न होती है। अनेक कहानी लेखकों और आलोचकों ने इसकी विभिन्न परिभाषायें की हैं। ब्रेण्डर मैथ्यू के अनुसार :- A short story deals with a single character or a series of emotions called forth by a single situation. The short story must be an organic whole. "कहानी में एक ही चरित्र या एक ही घटनात्मक स्थिति में विभिन्न भावों का चित्रण होता है, निश्चय ही वह पूर्ण रूप में मार्मिक होनी चाहिए।"

जो घटना हमारी रागात्मक वृत्तियों को जगा नहीं सकती, उसमें हलचल नहीं मचा सकती वह कहानी का विषय भी नहीं बन सकती। हृदय पर सबसे अधिक प्रभाव जिन घटनाओं का पड़ता है उनमें भयोत्पादक और कारुणिक घटनायें मुख्य हैं। सुप्रसिद्ध कहानी लेखक एच० जी० वेल्स के शब्दों में—"It may be horrible or pathetic or funny or beautiful or profoundly illuminating, having only this essential that it should take from fifteen to fifty minutes to read aloud" "कहानी के अन्दर भयजनक, कारुणिक, मनोरंजक, सुन्दर और संपूर्ण रूप में चमत्कारपूर्ण घटनाओं में से किसी एक का चित्रण होना चाहिए; जिसके पढ़ने में पन्द्रह से पचास मिनट का समय

लगे।" समय का परिमाण निश्चित करते हुए 'एडगर एलेन पो' ने लिखा है कि "कहानी एक प्रकार का वर्णनात्मक गद्य है, जिसके पढ़ने में आधे घण्टे से लेकर एक घण्टे तक का समय लगता है।" मानव के प्रत्येक क्रिया-कलाप का वर्णन यदि दूसरों के हृदय को प्रभावित और उसमें रस का संचार कर सके तो उसे कहानी के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। ह्यू वाकर ने इसीलिए "मानव के प्रत्येक क्रिया कलाप को कहानी कहा है।" पोकाक के मत में—"कहानी का प्रत्येक भाग प्रसंगानुकूल और उचित तो होना ही चाहिए, उसके प्रत्येक शब्द और वाक्य का सम्बन्ध भी कथावस्तु, चरित्र या वातावरण से होना आवश्यक है।" जॉन फोस्टर ने 'चरम सीमा (climax) को प्रधानता दी है। उसके मत में कहानी—(It is a series of crisis, relative to other and bringing about a climax.) "घटनाओं की वह परम्परा है जो परस्पर सम्बद्ध होकर एक निश्चित परिणाम पर पहुंचाने वाली हो।"

उक्त पाश्चात्य विद्वानों के मतों का विवेचन करने से कहानी की निम्नलिखित विशेषतायें स्पष्ट हो जाती हैं—

(१) कहानी साहित्य की वह धारा है जो अपने वस्तु रूप में जीवन की किसी विशेष घटना को चित्रित करती है और जो एक ही बैठक में पढ़ी जा सके।

(२) वह उपन्यास की तरह जीवन के बहुरंगी चित्रों को उपस्थित न कर, जिनमें कि अनेक उलझनें होती हैं; किसी एक अंश की झांकी दिखलाती है।

(३) उसमें क्रिया, प्रभाव और लक्ष्य की एकता होनी चाहिये।

(४) उसके प्रत्येक शब्द और वाक्य का लक्ष्य कथावस्तु को आगे बढ़ाना होना चाहिये।

(५) सम्पूर्ण घटना क्रम, परिणाम या चरम सीमा (climax) की ओर उन्मुख होना चाहिये।

(६) प्रारम्भ और अन्त आकर्षक और मार्मिक होना चाहिये।

(७) उसके पढ़ने में पन्द्रह मिनट से एक घंटे तक का समय लगे।

भारतीय विद्वानों ने भी कहानी की विभिन्न परिभाषायें दी हैं। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के शब्दों में :—

"घटनात्मक इकहरे चित्रण का नाम कहानी है। साहित्य के सभी अङ्गों के समान रस उसका आवश्यक गुण है।"

श्री इलाचन्द्र जोशी का कथन है कि "जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के संघर्ष से उलटा सीधा चलता रहता है। इस सुवृहत् चक्र के किसी विशेष परिस्थिति की स्वाभाविक गति का प्रदर्शन ही कहानी होती है।"

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने कहानी को "जीवन रहस्य की अभिव्यंजना बताया है। रहस्य व्यक्ति के मानस में निवास करते हैं और उनका उद्घाटन घटनाओं द्वारा होता है। व्यक्ति समाज का अंग होता है। इस प्रकार प्रत्येक कहानी प्रकारान्तर से समाज की ही कहानी हुआ करती है।" तथा "जब तक कहानी में किसी चरित्र विशेष की सृष्टि नहीं होती, किसी व्यक्ति की अन्तरात्मा का यथार्थ विशिष्ट प्रतिबन्ध नहीं झलकता,

उसके जीवन के रागात्मक उच्छ्वास शब्दों की काया नहीं ग्रहण करते, तब तक कोई भी कहानी सही अर्थों में कहानी नहीं होती।"

प्रसाद जी ने "आख्यायिका में सौंदर्य की एक झलक का चित्रण करना और उसके द्वारा रस की सृष्टि करना ही" कहानी का उद्देश्य माना है। प्रसाद जी ने अपनी कहानियों में एक कलाकार की तरह ही सौंदर्य का चित्रण किया है।

श्री रायकृष्णदास जी ने कहा है कि—"आख्यायिका, चाहे किसी लक्ष्य को सामने रख कर लिखी गई हो व लक्ष्य विहीन हो, मनोरंजन के साथ साथ अवश्य किसी न किसी सत्य का उद्घाटन करती है।"

श्री विनोद शंकर व्यास ने लिखा है कि—"आधुनिक कहानियों का ध्येय है मनुष्य के मनोरहस्यों का उद्घाटन करना, उनमें अनियन्त्रित और अप्रासंगिक भावुकता के प्रदर्शन का अवकाश नहीं" और "वही कहानियाँ सफल समझी जाती हैं जिनमें कहानी लेखक निर्लिप्त भाव से एक ऐसी दुनियाँ की सृष्टि कर दे, जो वास्तविक जगत से परे न हो।" "कहानी में इतनी शक्ति होनी चाहिये कि थोड़ी देर के लिये पाठक सब कुछ भूल कर उसके पात्रों की भावनाओं के साथ बहने लगें।"

यशस्वी कहानीकार श्री प्रेमचन्द जी के मतानुसार—"कहानीकार का उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं वरन् उसके चरित्र का एक अङ्ग दिखाना है।" तथा "वर्तमान आख्यायिका का मुख्य उद्देश्य साहित्यिक रसास्वादन कराना है

और जो कहानी इस उद्देश्य से जितनी दूर जा गिरती है उतनी ही दूषित समझी जाती है।" —(प्रेमद्वादशी)

"वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है।" "सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार, किसी मनोविज्ञानिक सत्य पर हो।"

—(कहानी कला)

जिन भारतीय विद्वानों का मत मैंने उद्धृत किया है वे सभी हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कहानी लेखक हैं। यदि इन कलाकारों के परिभाषाओं क समीक्षा की जाय तो कहानी की निम्नलिखित विशेषतायें दिखाई पड़ेंगी।

(१) हृदय की रागात्मक वृत्तियों को जगा कर भावान्वित करना और रसास्वादन कराना। यह गुण न केवल कहानी का अपितु साहित्य के अन्य अंगों का भी है।

(२) जीवन की किसी एक ही घटना या विशेष परिस्थिति या सौंदर्य की एक अलौकिक झलक को दिखाना। किसी सामाजिक स्थिति विशेष का चित्रण भी इसमें सम्मिलित किया जा सकता है।

(३) कहानी का आधार जीवन का कोई रहस्य, मनोवैज्ञानिक सत्य या जीवन के यथार्थ स्वभाव का चित्रण होना चाहिये।

कहानी साहित्य का कलात्मक विकास तीव्र गति से हुआ है। कहानी लिखने की शैलियों में भी अनेकों प्रयोग हुए हैं और

उसके स्वरूप में भी महान् परिवर्तन हुआ है। आज उत्कृष्ट श्रेणी की कहानी वह मानी जाती है जो पाँच मिनट में पढ़ी जा सके और जिसमें लेखक कल्पना-शक्ति के सहारे, कम से कम पात्रों और चरित्रों के द्वारा, कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से, अभीष्ट प्रभाव की सृष्टि करता है। उसमें कथानक, चरित्र-चित्रण और उपयुक्त वातावरण के सृजन के साथ शैली की सरलता और मनोरंजकता का भी समावेश अपेक्षित है। कहानी का लक्ष्य निश्चित होना चाहिये और वह लक्ष्य केवल यथार्थ और नग्न चित्रण की अपेक्षा श्रेय की सिद्धि होना चाहिये। श्रेय और प्रेय का उचित सम्मिश्रण ही साहित्य और उसके विशिष्ट अंग कहानी का उद्देश्य होना चाहिये। मौलिकता कहानी का सबसे प्रधान गुण है।

गुण-दोष :—

कहानी की परिभाषाओं में उसके विभिन्न गुणों और विशेषताओं का उल्लेख हो चुका है। जिस प्रकार मानव सौन्दर्य के लिये सुगठित और सुडौल शरीर आवश्यक है, उसी प्रकार कहानी के लिये भी उसके ढांचे का सुगठित और सुन्दर होना आवश्यक है। कई लेखक कथावस्तु के अभाव में भी अपनी भावात्मक शैली का अनुसरण करते हुए वृत्त वर्णन द्वारा कहानी का रूप खड़ा कर देना चाहते हैं। जबकि थोड़ी सी भी असम्बद्धता कहानी के प्रभाव को नष्ट कर देती है, तो कथानक के अभाव में कहानी को मूर्त रूप देना असाध्य साधन ही है। कहानी का अनाकर्षक आरम्भ सबसे बड़ा दोष है। इससे आरम्भ में ही पाठक को अरुचि हो जाती है। आचार्य रामचन्द्र

शुक्ल के शब्दों में—"आख्यायिकाओं की बड़ी शक्ति है। ये समाज की प्रवृत्तियों को जहाँ अभिव्यक्त करती हैं, वहाँ उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकती हैं। इसलिये कहानी में नंगापन और फूहड़पन कहानी कला की कोई सेवा नहीं कर सकता।" कहानी साहित्य का एक अंग है उसका उद्देश्य, मनोरंजन के साथ साथ रुचि का परिष्कार और सद्वृत्तियों को जगाना भी है। कहानी द्वारा कुरुचि उत्पन्न करना, व्यक्ति समाज और देश को बहुत बड़ी हानि पहुँचाना है। प्रभावहीनता कहानी को मूल्यहीन बना देती है। सस्ती भावुकता का चित्रण मन पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं डालता। जिस प्रकार चिरस्थायी काव्य के सृजन के लिये मानव मन की चिरन्तन और सार्वकालिक भावनाओं का आश्रय लेना आवश्यक है, उसी प्रकार उत्कृष्ट कहानी को भी मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर ही आश्रित होना चाहिये। कहानी में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का तात्पर्य तर्कशास्त्र की तरह मनोवेगों की शल्य-क्रिया मात्र नही है। इन चिरन्तन भावनाओं की अभिव्यक्ति भी उच्च स्तर पर, उत्कृष्टतम शैली में होनी चाहिये। उदाहरण के लिये प्रेम, एक चिरन्तन भावना और मनोवैज्ञानिक सत्य है। आधुनिक युग की अधिकांश कहानियाँ इसी तथ्य को लेकर लिखी जाती है। "उसने कहा था" कहानी भी इसी मनोवैज्ञानिक सत्य को आधार बना कर लिखी गई है, किन्तु आज कितनी कहानियाँ है जो प्रभावोत्पादकता और कलात्मक उत्कृष्टता में उसकी सीमा को भी छू सकें।

घटनाओं में क्रम हीनता, चरित्र की अस्पष्टता, संवादों में अस्वाभाविकता, वातावरण के सृजन करने वाले वर्णन का

अभाव, आकर्षण और प्रभाव शून्य आदि एवं अन्त, कहानी के मध्य में ही रहस्योद्‌घाटन, कल्पना की ऊँची उड़ान और प्रवाह-रहित बोझिल भाषा—ये दोष हैं जिनके कारण कहानी नीरस और कला शून्य मालूम होती है।

साहित्य के अन्य अंगों से अन्तर

कहानी और कविता :—

कविता पद्य-बद्ध रचना है; कहानी गद्य में लिखी जाने वाली। कविता भाव जगत की उन संचित अनुभूतियों का मूर्त रूप है जिनकी अभिव्यक्ति में कल्पना प्रमुख भाग लेती है। कहानी जीवन के किसी विशिष्ट सत्य के प्रकाशन के उद्देश्य से लिखी जाती है इसलिये उसमें कविता की अपेक्षा चिन्तन और मनन का अंश प्रधान रहता है। कविता केवल भाव या दृश्य चित्रण पर जीवित रह सकती है, कहानी नहीं। कहानी का भावात्मक अंश कविता ही है, पर कविता में सम्भाव्य सत्य की प्रधानता रहती है और कहानी में सामान्य दैनिक जीवन की सजीव सत्यता। कविता मुक्तक काव्य है, अतः घटनाओं की असम्बद्धता का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु कहानी को संगठित्त रूप में एक निश्चित परिणाम पर पहुँचना चाहिये। कल्पना, भाव और बुद्धितत्व से समन्वित होने पर भी कविता में बुद्धि तत्व कहानी की अपेक्षा कम ही होता है।

महाकाव्य और खण्ड काव्य :—

महाकाव्य और खण्ड काव्य के कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, वातावरण आदि कतिपय तत्व कहानी के तत्वों से भिन्न नहीं

हैं, किन्तु शैली, उद्देश्य और बाह्य तथा अन्तः स्वरूपों में दोनों में महान अन्तर है। कविता से कहानी में जो भिन्नता है वह तो इनमें भी वर्तमान है, महाकाव्य में छोटी कहानियों के आकार प्रकार की अनेक प्रासंगिक कथायें भी अन्तर्भूत रहती हैं। उसमें सम्पूर्ण जीवन का चित्र उपस्थित किया जाता है। यात्रा वर्णन, युद्ध वर्णन, ऋतु वर्णन आदि का समावेश महाकाव्य में ही हो सकता है, कहानियों में नहीं। खण्ड काव्य में जीवन की किसी विशिष्ट घटना को ही आधार बनाया जाता है, पर उसमें वृत्त वर्णन की भी प्रधानता हो सकती है और वातावरणके चित्रण की भी। उसमें कई पात्रों का समावेश भी हो सकता है। कहानी को अपनी संकुचित सीमा में कम से कम पात्रों का प्रवेश कराना पड़ता है, शैली की भिन्नता तो दोनों में है ही। काव्यों में रस की परिपक्वता आवश्यक है पर कहानी में केवल भाव चित्रण भी हो सकता है।

कहानी और नाटक :—

नाटक दृश्य काव्य है, कहानी श्रव्य। दोनों में ही कथानक, पात्र, संवाद आदि समान तत्त्वों का समावेश है। नाटक का अभिनय किया जाता है, इस के अभाव में नाटक पूर्णतया रसकी सृष्टि करने में असमर्थ रहता है। कहानी न तो अभिनेय है, न उसके पढ़ने और मनोरंजन करने के लिये किसी निश्चित स्थान पर जाना पड़ता है। समय का भी प्रतिबन्ध नहीं है और न कहानी के लिये उन विपुल उपकरणों की आवश्यकता है, जो नाटक के अभिनय के समय रंगमंच को सजाने के लिये एकत्रित किये जाते हैं। कहानी सर्वजन-सुलभ है, नाटक नहीं। नाटक में एक रस की मुख्यता होते हुये भी अन्य

रसों का अन्तर्भाव किया जाता है, किन्तु कहानी में एक ही रस या भाव को पुष्ट करने का प्रयास होता है।

शब्द-चित्र या गद्य-गीत :—

शब्द-चित्र या गद्यगीत से भी कहानी भिन्न है। इनमें किसी एक ही विशेष मानसिक स्थिति या भाव का चित्र होता है, जबकि कहानी अपनी कथावस्तु की पूर्ति में ऐसे अनेकों भाव-चित्रों को संजोये रहती है।

कहानी और उपन्यास :—

कहानी उपन्यास का संक्षिप्त संस्करण मात्र नहीं है। मूल तत्वों की समानता होते हुए भी आकार-प्रकार, योजना-गठन तथा लक्ष्य में वह सर्वथा भिन्न है। उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत है, वह जीवन की समस्त परिधि को स्पर्श कर सकता है, वह जीवन का दर्पण है; किन्तु कहानी का क्षेत्र संकुचित है, वह जीवन के आँशिक सत्य की ही झलक दिखा सकती है। उपन्यास में अनेक भावों और विचारों की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, जबकि कहानी एक ही विचार को मूर्त रूप देती है। उपन्यास, घटनाओं, पात्रों और चरित्रों का समूह है, उसमें कई चरित्र तो मनोविश्लेषण के लिए ही होते हैं। सरस भाषा में समाज और राजनीति पर वाद-विवाद, दृश्य-चित्रण आदि उपन्यास में सम्भव है, पर कहानी में इनके लिए अवकाश नहीं होता; उसमें तो एक ही घटना-विशेष तथा भाव-विशेष की अभिव्यक्ति सीमित पात्रों द्वारा की जाती है। कहानी का केन्द्र-बिन्दु उसका आदर्शभाव है, उसका प्रत्येक शब्द और वाक्य

तीव्र गति से प्रवाहित होता हुआ केन्द्र विन्दु तक पहुँच कर अपने उद्देश्य की सिद्धि करता है, उत्सुकता और रोचकता को सुरक्षित रखकर उपन्यास, समाज की व्यापक समस्याओं पर विचार कर सकता है; किन्तु कहानी तो उत्सुकता की उत्तरोत्तर वृद्धि करती हुई तीव्रतम स्थिति (Climax) तक पहुँचना चाहती है। कहानी से जो परिणाम या तत्व निकलें वे सर्वमान्य होने चाहिएं। कहानी की एक तथ्यता ने उसमें प्रभाव, आकस्मिकता और गति में तीव्रता दी है; उपन्यास की व्यापकता ने उसे शिथिल गति बना दिया है। कहानी और उपन्यास दोनों के लोकप्रिय होते हुए भी आज का युग "गल्प-युग" ही कहा जाता है। पात्रों का चरित्र-चित्रण करने के लिए, उनके वास्तविक रूप को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने के लिए, अनेकों घटनाओं, प्रासंगिक कथाओं और उसके वेष-भूषा, हाव-भाव, आदि का वर्णन उपन्यासकार सम्मिलित कर लेता है, पर कहानी में एक ही घटना के अन्दर उसके मनोभावों के विश्लेषण द्वारा ही पात्र का चरित्र चित्रित करने का प्रयास किया जाता है। अब तो व्याख्या का अंश इतना कम और संवेदना का अंश इतना अधिक होगया है कि उसमें बहुमुखी भावों की ओर केवल संकेत मात्र ही मिलता है। दोनों का उद्देश्य मनोरंजन होते हुए भी कहानी में कम समय और कम खर्च लगता है।

कहानी और इतिहास :—

इतिहास में अतीत की अनेकों घटनाओं को भी क्रम-बद्ध रूप में उपस्थित किया जाता है। वे कहानियां मालूम होते हुये भी

कहानी नहीं है। इतिहास के सत्य और कहानी के सत्य में अन्तर है। इतिहासकार को तथ्यान्वेषण और घटना के घटित होने का प्रमाण संग्रह करना पड़ता है, जब कि कहानीकार को किसी प्रकार के तथ्य संग्रह की आवश्यकता नहीं है वह तो सम्भाव्य सत्य को ही चित्रित करता है। मानव-मन जिसे बिना ननु-नच किये स्वीकार करले वही कलाकार का सत्य है और कहानी में इसी सत्य का चित्रण होता है। मनुष्य के बाह्य और अन्तः जगत से कलाकार इसी सत्य का अन्वेषण करता है। कलाकार अशिव और मिथ्यात्व का भी अंकन करता है पर इसलिये कि, हम उससे विरत हों। वह इनके वर्णन में कभी भी आकर्षण पैदा करने का प्रय स नहीं करेगा, यदि वह ऐसा करता है तो वह पाठकों को ऐसी मदिरा पिलाता है जिससे वे विवेक खो बैठेंगे। उत्कृष्ट कलाकार अशिव का चित्रण शिव के रूप को और भी जाज्वल्यमान बनाने के लिये ही करता है। इतिहासकार को इसकी चिन्ता नहीं होती कि नादिरशाह के या उसके अत्याचारों के प्रति मन में किसी प्रकार का भाव पैदा करे, वह तो केवल मारे गये व्यक्तियों की संख्या और लूटी गई सम्पत्ति का हिसाब लगाकर अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेगा। कहानी, साहित्य का एक अंग है; अतः वह कल्पना का मान्द्र चित्र प्रस्तुत करके हृदय को संवेदन शील बनाती है, और अनुभूतियों के दृश्य चित्रण में 'रस' का सृजन करती है। वह हमारे हृदय की सद्वृत्तियों को जगाकर उनका परिष्कार करती है। इतिहास से हम सीख सकते हैं, पर इतिहास हमें सिखाने का प्रयास नहीं करता। कहानी हमें न सिखाते हुये भी सत्य, शिव और सुन्दर का रूप हमारे सामने प्रस्तुत कर देती

है। इतिहास में उत्सुकता और रोचकता पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है, परन्तु कहानी इनके बिना निर्जीव हो जायेगी। कहानी जीवन के अधिक समीप है क्योंकि उसमें दैनिक जीवन के यथार्थ सत्य की अभिव्यक्ति होती है। इसीलिये तो एक आलोचक ने लिखा है कि—"इतिहास में सब कुछ यथार्थ होते हुये भी वह असत्य है और कथा-साहित्य में सब कुछ काल्पनिक होते हुये भी वह सत्य है।" जहां वास्तविक आनन्द है वहीं सत्य है। साहित्य काल्पनिक होते हुये भी लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि करता है, इसीलिये वह सत्य है।

कहानी के मूल तत्व—

कहानी में जिन घटनाओं, क्रिया-कलापों और व्यापारों का वर्णन होता है उनका संगठित होना आवश्यक है, क्योंकि उनका संगठित रूप ही कथानक कहलाता है। ये घटनायें पात्र के जीवन में युगान्तर या परिवर्तन करने वाली होती हैं। प्रत्येक कहानी, लेखक, पात्रों की योग्यता और स्थिति, तथा विषय और उद्देश्य के अनुसार ही इन्हें प्रस्तुत करता है। इस कथानक के कलेवर में ही हमें क्रमशः पात्रों का परिचय मिलता है, क्योंकि कथानक में इन पात्रों के जीवन के चमत्कारपूर्ण अंश या भाव का चित्रण होता है। दो पात्रों के मिलने पर, आपस में बात-चीत, भाव-भंगी और अभिनय आदि का समन्वित रूप ही कथोपकथन कहलाता है। घटनायें किसी विशिष्ट स्थान, काल और परिस्थिति में घटती है, वर्णन द्वारा इन तीनों स्थितियों का मूर्त रूप उपस्थित कर देना ही वातावरण कहलाता है। कहानी के अन्तराल में लेखक का व्यक्तित्व और अभिव्यक्ति का ढंग सन्निहित रहता है, यह अभिव्यक्ति का ढंग ही शैली है। कहानी निरुद्देश्य नहीं होती और न ही उसमें स्वप्न लोक की बातों से मनोरंजन करने का उद्देश्य होता है; उसमें तो जीवन की सुख-दुःखमयी द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति का प्रकाशन होता है।

कहानीकार भी निरुद्देश्य लिखने में प्रवृत्त नहीं होता ; वह जीवन के जिस आँशिक सत्य का प्रकाशन करना चाहता है, वही कहानी का उद्देश्य होता है। कहानी में औत्सुक्य और कौतूहल सुरक्षित रखने के लिए वह कहानी के मूल भाव को सब से अन्त में अभिव्यक्त करता है। कलाकार की कुशलता इसी में निहित है कि वह कहानी के उस केन्द्र-बिन्दु की अभिव्यक्ति के साथ ही, चमत्कारपूर्ण ढंग से कहानी का अन्त भी करदे। कहानी के इसी चरम-परिणति या आदर्श भाव को (Climax) क्लाइमैक्स कहते है। इसका समावेश कथानक में ही किया जा सकता है :—

इस प्रकार रचना की दृष्टि से कहानी के निम्नलिखित तत्व होते हैं-

१ कथानक, [वस्तु, वृत्त या Plot.]
२ पात्र, [चरित्र-चित्रण]
३ कथोपकथन,
४ वातावरण,
५. शैली,
६ उद्देश्य।

इन मूल तत्वों को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इनका अलग अलग विवेचन करना आवश्यक है।

कथानक :—

कहानी में कथानक का महत्वपूर्ण स्थान है, यही कहानी का ढांचा है; इसके अभाव में कहानी का निर्माण असम्भव है। जबसे मनोविश्लेषण, कहानी में महत्वपूर्ण माना जाने लगा कथानक की प्रमुखता अपेक्षाकृत कम हो गयी, किन्तु फिर भी

इसके अभाव की कल्पना नहीं की जा सकती। कथावस्तु का बीज कलाकार की उन अनन्त अनुभूतियों से प्राप्त होता है जिन्हें वह दैनिक जीवन में संचित करता है। जिस घटना का प्रभाव उसके हृदय पर सबसे अधिक पड़ता है उसे ही वह कथा वस्तु का रूप देता है, यह घटना चाहे उसके अपने जीवन में घटी हो या दूसरों के। अन्य व्यक्तियों की जीवन-घटनाओं को वह सुनकर, पढ़कर या देखकर किसी भी भांति जान सकता है, इसीलिये भारतीय आचार्यों ने कथानक के तीन भेद माने हैं- [१] प्रख्यात [२] उत्पाद्य [३] मिश्रित।

प्रख्यात—जिस कथानक का स्रोत, पुराण, इतिहास या जनश्रुति हो उसे 'प्रख्यात' कहा जायेगा। इसमें कहानी कार घटनाओं के तथ्यों में परिवर्तन नहीं कर सकता। कथानक की अभिव्यक्ति का ढंग चाहे जो भी हो, पर सम्पूर्ण रूप में वह मूल कथा के ही अनुसार होनी चाहिये।

उत्पाद्य—कथानक सम्पूर्ण रूप में मौलिक होता है; उसका मूलस्रोत कहानीकार की हृदयस्थित अनुभूतियां ही होती हैं। इस कथानक की पृष्ठ भूमि में प्रख्यात की सच्चाई नहीं होती, कलाकार का सम्भाव्य सत्य ही इसका आधार होता है। कल्पना शक्ति के सहारे वह किसी भी घटना को अतीत, वर्तमान और भविष्य-जीवन का वर्ण्य विषय बनाकर प्रस्तुत कर सकता है। काल्पनिक वातावरण के सृजन में उसे स्वच्छन्दता होती है, जब कि प्रख्यात कथानक के वातावरण-चित्रण में उसे युग-विशेष की निश्चित सीमा में बँधा रहना पड़ता है। आधुनिक युग की अधिकांश कहानियां इसी प्रकार के कथानक को आधार बनाकर लिखी जाती हैं।

मिश्रित—प्रख्यात कथानक को लेकर जब कहानीकार अपनी इच्छानुसार उसमें कलात्मक परिवर्तन, परिवर्धन या संशोधन कर लेता है तब मिश्रित कथावस्तु की सृष्टि होती है। वह प्रसिद्ध और नीरस घटनाओं को लेकर भी अपनी प्रतिभा से अपरिचित एवं रुचिकर बना देता है, तथा अपने भावों के समावेश से उनमें मौलिकता, नवीनता और भव्यता की झलक दिखा देता है, साधारण बातों में भी असाधारणता भर देना, लौकिक घटनाओं में भी अलौकिक चमत्कार दिखा देना ही उत्कृष्ट कलाकार का कर्तव्य है। प्रसाद जी की ऐतिहासिक कहानियां कथावृत्त की दृष्टि से इसी के अन्तर्गत गिनी जा सकती हैं।

स्वरूप :—

कथानक, उक्त तीनों भेदों में से चाहे किसी प्रकार का हो, स्वरूप की दृष्टि से चार प्रकार का होता है—(१) घटना प्रधान (२) चरित्र प्रधान (३) भाव प्रधान (४) वर्णनात्मक।

घटना प्रधान - कथानक में घटनाओं की ही प्रधानता होती है। प्रत्येक घटना आपस में कार्य-कारण की शृंखला में बँधी होती है। इसमें दैवी-संयोग एवं अतिमानवीय शक्तियां कार्य करती हैं। प्राचीन कहानियों में रस-सृष्टि का कार्य घटना चमत्कार द्वारा ही किया जाता था। जासूसी कहानियों का आधार इसी प्रकार का कथानक होता है।

चरित्र प्रधान—यहां पात्र विशेष या पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करने में ही कथानक की इति कर्त्तव्यता रहती है; चरित्र विश्लेषण की पृष्ठ भूमि ही इसका आधार होती है। वही कथा

की सम्पूर्ण नाटकीय व्यंजना, चरित्रों का विकास और उनकी मनोवृत्तियों का निदर्शन करती है। मानव की चारित्रिक उलझनों और विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्त होने वाली उसकी चरित्र-गत विशेषताओं को ही वर्ण्य विषय बनाने में चरित्र प्रधान कथानक की सृष्टि होती है। प्रेमचन्द और सुदर्शन की अधि-कांश कहानियों में इसी प्रकार का कथानक ग्रहण किया गया है।

भाव प्रधान—कथानक में प्रेम, सहानुभूति करुणा आदि चिरन्तन भावों में से किसी एक की प्रभावशाली अभिव्यक्ति होती है। इसमें घटना और चरित्र का विशेष महत्व नहीं होता। सम्पूर्ण कथानक एक विशेष मनोदशा या भाव-मुद्रा का ही प्रतिफल जान पड़ता है। अन्तः संघर्षों का अंकन होते हुये भी, अभीष्ट भाव की धारा अविरल रूप में प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है और उस भाव विशेष की अभिव्यक्ति कथानक की आधार शिला बनकर भी अपने आप में पूर्ण होती है। घटना और चरित्र की विस्मृति में यह आदर्श भाव ही स्थायी प्रभाव छोड़ जाता है। प्रसाद जी की कहानियां इसके उदा-हरण हैं।

वर्णनात्मक—कथानक में वर्णन वैचित्र्य ही उसका प्राण होता है। दृश्य चित्रण और वातावरण प्रस्तुत करने के लिये कहानीकार चित्रमय शब्दों का प्रयोग करता है। उसका उद्देश्य घटना वैचित्र्य, चरित्र विश्लेषण और भाव सिद्धि की अपेक्षा वर्णन का चमत्कार-प्रदर्शन अधिक होता है। इसमें वर्णनात्मक काव्य का रस उपलब्ध होता है। हृदयेश जी की रचनायें इसी प्रकार की हैं।

कथानक के उक्त वर्गीकरण में केवल उसकी विशेषता का दिग्दर्शन मात्र है। घटना, चरित्र, भाव और वर्णन की प्रधानता के कारण ही इन्हें अलग अलग विवेचना का विषय बनाया गया है। एक ही कहानी में उक्त चारों तत्वों की उपलब्धि हो सकती है, पर किसी एक की विशेषता ही कथानक को उक्त श्रेणी में बिठा देगी।

दृश्य विधान :—

कथानक में एक या उससे अधिक घटनाएँ क्रमबद्ध रूप में संश्लिष्ट रहती हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि कहानी में इस तत्व का उपयोग करते हुए उसकी प्रत्येक घटना क्रमशः उपस्थित की जाय। कहानी का उद्देश्य मनोवेगों को तरङ्गित करना है, अतः उसे कलात्मक रूप देने के लिए कहानीकार कथानक के प्रारम्भ, मध्य या अन्त की किसी भी घटना को पहले उपस्थित कर सकता है। घटनाओं के क्रम विपर्यय का उद्देश्य कहानी में औत्सुक्य और कौतूहल की रक्षा है; क्योंकि इनके अभाव में वह नीरस और आकर्षण-हीन बन जायगी। कथानक के विभाजन के लिए वह दृश्य-विधान का आश्रय लेता है। यह दृश्य-विधान सम्भवतः दृश्य-काव्य (नाटक) से ही आया है। कहानी में प्रथम दृश्य, द्वितीय दृश्य लिखने के स्थान पर, एक, दो आदि संख्याओं का ही उपयोग होता है। प्रत्येक दृश्य के आरम्भ में नाटकीय अवतारणा की अपेक्षा रहती है और दृश्यान्त में चरम परिणति की ; किन्तु दृश्यान्त में ही रस विशेष का परिपाक नहीं होता, अतः उसका प्रभाव कम होता है। आजकल तो कई कहानियाँ इतनी छोटी होती हैं कि एक ही दृश्य में

उनकी समाप्ति कर दी जाती है, ऐसी कहानियाँ प्राय: भाव-प्रधान होती हैं।

वस्तु विन्यास के आधार पर कथानक के तीन भाग किये जा सकते हैं, प्रारम्भ मध्य, और अन्त। प्रारम्भिक अंश में मुख्य पात्रों का प्रवेश करा दिया जाता है, जिसमें उनका परिचय, परिस्थितियों का चित्रण और कथानक का बीज निहित रहता है। मध्य भाग में कथानक की सम्पूर्ण घटनाओं को क्रमशः उपस्थित किया जाता है। इसके उत्तरार्द्ध की सम्पूर्ण गति तीव्र स्थिति के उत्पादन की ओर बढ़ती है, जहां कहानी का रहस्य व्यक्त होता है और आदर्श भाव झलक उठता है। आधुनिक काल की उत्कृष्ट कहानी वही मानी जाती है जो रहस्याभिव्यक्ति के साथ ही समाप्त हो जाय। रस की दृष्टि से ठीक होते हुए भी औत्सुक्य-शान्ति के लिए कथानक का शेषांश देना आवश्यक हो जाता है, यही उसका अन्तिम भाग है। उदाहरण के लिये 'उसने कहा था' कहानी ली जा सकती है। लहनासिंह मृत्यु की छाया में जिन जीवन चित्रों को देखता है, वहीं कहानी की तीव्रतम स्थिति है, परन्तु अन्त की इन पंक्तियों के विना सैकड़ों प्रश्न खड़े हो जाते और कहानी पाठक को अतृप्ति की बाढ़ में छोड़ जाती—"कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा''' 'मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राईफल जमादार लहनासिंह।"

कथानक में तीव्रतम स्थिति (Climax.) की कल्पना संघर्ष की उपस्थिति को अनिवार्य मानकर की गई है। इस सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं—जहाँ कहानी का मुख्य भाव

परिपक्वावस्था में पहुँच जाता है वहाँ ही तीव्रतम स्थिति मानी जा सकती है या जहां संशय और अनिश्चयता को स्थिर रखने वाले कहानी के प्रच्छन्न भाग का उद्‌घाटन हो जाय, वहां। जब कथानक के मध्य भाग मे ही पात्र विशेष के चरित्र में परिवर्तन करने के लिये तीव्रतम स्थिति का उपयोग होता है, तब अन्त शिथिल हो जाता है।

आचार्य शुक्ल जी ने वस्तु-समष्टि के स्वरूप की दृष्टि से कहानियों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है:—

(१) सामान्यतः जीवनके किसी स्वरूप की मार्मिकता सामने लाने वाली अधिकतर कहानियां इस वर्ग के अन्तर्गत आयेंगी।

(२) भिन्न भिन्न वर्गो के संस्कार का स्वरूप सामने रखने वाली। प्रेमचन्द जी की "शतरंज के खिलाड़ी" और श्री ऋषभ चरण जैन की 'दान' नाम की कहानी।

(३) किसी मधुर या मार्मिक प्रसंग-कल्पना के सहारे किसी ऐतिहासिक काल का खण्ड चित्र दिखाने वाली। जैसे—रायकृष्णदास जी की 'गहूला' और जयशंकर प्रसाद जी की 'आकाश दीप'

(४) देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था से पीड़ित जन समुदाय की दुर्दशा सामने लाने वाली, जैसे, श्री भगवती प्रसाद बाजपेयी की 'निंदिया लागी' तथा श्री जैनेन्द्रकुमार की 'अपना अपना भाग्य' नाम की कहानी।

(५) राजनीतिक आन्दोलन में सम्मिलित नवयुवकों के स्वदेश प्रेम, त्याग, साहस और जीवनोत्सर्ग का चित्र खड़ा करने

वाली, जैसे पाण्डेय वेचन शर्मा 'उग्र' की 'उसकी मां' नाम की कहानी।

(६) समाज के भिन्न भिन्न क्षेत्रों के बीच धर्म, सुधार, व्यापार व्यवसाय, सरकारी काम, नई सभ्यता आदि की ओट में होने वाले पाखण्ड पूर्ण पापाचार के चटकीले चित्र सामने लाने वाली कहानियाँ, जैसी उग्र जी की है।

(७) सभ्यता और संस्कृति की किसी व्यवस्था के विकास का आदिम रूप झलकाने वाली, जैसे—रायकृष्ण दास जी की 'अन्तःपुर का आरम्भ'।

(८) अतीत के किसी पौराणिक या ऐतिहासिक काल खंड के बीच अत्यन्त मार्मिक और रमणीय प्रसंग का अवस्थान करने वाली, जैसे, श्री विन्दु ब्रह्मचारी और श्रीसंत समंत (पं० वालक राम विनायक) की कहानियाँ।

(९) हास्य विनोद द्वारा अनुरञ्जन करने वाली। जैसे जी०पी० श्रीवास्तव, अन्नपूर्णानन्द और कान्तानाथ पाण्डे 'चोंच' की कहानियाँ।

कथावस्तु की अनेक विवधता के कारण कहानियों के भी वहुत से भेद किये जा सकते है। शुक्ल जी ने मुख्य भेदों के आधार पर ही यह वर्गीकरण किया है।

उद्गम स्थान—

उदयन आदि की ऐतिहासिक कथाएं तथा रामायण, महाभारत पुराण आदि, भारतीय साहित्य के कवि, नाटककार, आख्यायिका और आख्यान लेखकों के लिये प्रेरणा स्रोत वने

रहे। जब भी कलाकारों ने इनकी ओर याचना भरी दृष्टि से देखा, उनकी फैली झोली भर गई। उन्होंने कथानक दिया, भाव लुटाया और खोल दिया उक्तियों से हरे भरे उपवन का द्वार, जहाँ कलाकारों की कल्पना उन्मुक्त विचरण करती रही। वहां के ही उपकरणों से काव्य, नाटक और कहानियों के घरौंदे बने, झोपड़ियां निर्मित हुई और गगनचुम्बी अट्टालिकाओं की नींव पड़ी, पर वह उपवन देवों का था, अति मानवों का था; सामान्य जन की भावनाएं वहां जाते हुए झिझकती थीं। परन्तु आज का कलाकार अतीत के उन महलों की ओर नहीं दौड़ता, वह तो अपने आस-पास की दुनियां से ही प्रेरणा ग्रहण करता है, गावों से कंकड़ पत्थर चुनता और साहित्य की भव्य, आडम्बरहीन किन्तु आकर्षक तथा सरल निवासों की नींव डालता है; जहां आज का पीड़ित मानव प्रवेश करते हुए न हिचके, न ठिठके; उसे अपना समझकर अपनाले। श्री सुदर्शन जी ने शान्त और एकान्त गाँव में ग्राम वधुओं की चहल-पहल का प्रमुख स्थान 'पनघट' ही आज के कथानक का मुख्य स्रोत माना है; क्योंकि वहां जीवन है और है भारतीय आत्मा का सच्चा रूप दर्शन। उन्होंने अपनी "पनघट की कहानी" में उसी कथा-स्रोत का दर्शन कराया है:—

"नया लेखक कहानी लिखने बैठा, तो कलम ने कहा—बोल, क्या लिखूं ?"

लेखक सोच में पड़ गया कि क्या कोई ऐसा बाग नहीं, जहां कहानियाँ वृक्षों की तरह उगती हों? आदमी जाय, दो चार मन-माफिक कहानियाँ तोड़ लाये, और उन्हें बनाकर

सजाकर, शीशे की तरह चमकाकर, किताबों के पन्नों पर रख दे और लोग, उन शीशे के फूलों में अपनी आत्मा देखें, और कभी सुखी हों, कभी दुखी हों, कभी उन्हें झूठा कहकर उनकी तरफ से मुंह मोड़ लें।

पास से एक वृद्धा गुजर रहा था, उसने नए लेखक की हैरानी को देखा और कहा—मैं एक ऐसी जगह जानता हूँ, जहाँ कहानियाँ वृक्षों की तरह उगती हैं, बड़ी होती है, फलती-फूलती हैं और वहां इतनी कहानियां है कि अगर तू हर रोज़ एक कहानी तोड़े और सारी उम्र तोड़ता रहे, तब भी उनमें कमी न आए और वह सदा-बहार बाग़ उसी तरह लहलहाता रहे।

नया लेखक बूढ़े के साथ साथ चलने लगा। पहिले शहर की तंग गलियां मिलीं। वहां सादगी खेलती थी, प्यार मुस्कुराता था, चिन्ता देखती थी। लेखक वहीं रुक गया, और बोला—यहां कहानियां है।

मगर बूढ़े ने कहा—अभी आगे।

इसके बाद वे दोनों खुले बाजार में आए। वहां बेशरमी नाचती थी, मुस्कुराती थी, गाती थी और उसके गले की तानें सुनने के लिये सैकड़ों लोग अपने घरों से दौड़ आते थे। नया लेखक वहीं ठिठक गया और बोला—कहानियां यहां भी हैं।

मगर बूढ़े ने जवाब दिया—अभी और आगे।

इसके बाद हवेलियां और कोठियां आईं। वहां अमीरी के चोंचले थे, दिलों की निर्दयता थी और शान और शौकत

थी। 'नौजवान लेखक वहीं ठहर गया और बोला—कहानियाँ यहाँ भी तो हैं।

मगर बूढ़े ने जवाब दिया—अभी और आगे जाओ।

इसके बाद खेत मिले। वहाँ मेहनत और मजदूरी और गरीबी जमीन पर काम करती थी, आसमान पर आशा ढूंढती थी और अपने अंधेरे में बैठकर रो लेती थी। नए लेखक ने आग्रह से कहा—कहानियाँ यहाँ भी हैं।

मगर बूढ़ा बोला—अभी और आगे जाओ।

अब दोनों पनघट के पास पहुंच गए। वहाँ अबोध बचपन था, कुंवारी जवानियाँ थी और ब्याहे हुए रूप थे। वहाँ खिले हुए दिल थे, लहलहाती हुई आशाएं थीं, और झूमती हुई उमंगे थीं।

वहाँ उजड़ी हुई शरम थी, और ठुकराया हुआ प्यार था, और मुरझाई हुई मेहनत थी।

बूढ़े ने पनघट पर बसे इस संसार की तरफ इशारा किया और कहा—यही वह जगह है, जहाँ कहानियाँ उगती हैं, बड़ी होती हैं, फलती फूलती हैं। यहीं से कहानियाँ गलियों में जाती हैं, यहीं से बाजारों में जाती हैं, यहीं से कोठियों में जाती हैं, यहीं से खेतों में जाती हैं।

यही कहानियों का बाग है और यहाँ इतनी कहानियाँ उगती हैं कि अगर तू यहाँ से हर रोज एक कहानी तोड़े और अपनी सारी उम्र तोड़ता रहे, तब भी इनमें कमी न आएगी और कहानियों का यह सदा-बहार बाग इसी तरह लहलहाता रहेगा।

लेखक खुश हो रहा था और उसकी निगाहें अपने लिए कहानी का चुनाव करने के लिये कहानियों के बाग में इधर उधर दौड़ती फिरती थीं।"

पात्र और चरित्र चित्रण:—

पात्र कथा वस्तु के संचालक हैं, अतः निजी व्यक्तित्व रखते हुए भी इन्हें कथानक में घुला मिला रहना चाहिये। पात्रों के निर्माण में कल्पना की अपेक्षा कलाकार की अनुभूति अधिक सजग रहती है। पात्र, अतीत, वर्तमान या भविष्य किसी युग विशेष के हों, उनका पार्थिव एवं सप्राण होना आवश्यक है। कहानी के लिये पात्रों की संख्या निश्चित न होने पर भी कम से कम पात्रों का ही समावेश उचित है, क्योंकि अपनी लघु सीमा में वह बहुसंख्यक पात्रों के चरित्र को स्पष्ट नहीं कर सकती। उत्तम श्रेणी की कहानियों में दो से अधिक पात्रों के लिये स्थान बनाना कठिन है। कभी २ पात्रों के सृजन का उद्देश्य एक ही 'भावना' को दो दृष्टि कोणों से निरूपित करना होता है, पर ऐसे स्थलों पर पात्र गौण बन जाते हैं। प्रारम्भ में पात्र, दृश्य रहते हुये भी अदृश्य, प्रस्तुत रहते हुये भी अप्रस्तुत रहें, तभी कहानी में रहस्य की सृष्टि होती है, यही रहस्य आनन्द बनता है तथा पात्र के चरित्र की विशेषता एक बार ही झलका देता है।

पात्र दो प्रकार के होते हैं *लोकोत्तर और सामान्य*। प्राचीन कहानियों में लोकोत्तर चरित्रों की ही अधिकता है; ये पात्र सात्विक अथवा तामसिक भावापन्न, दोनों ही प्रकार के हो सकते है। इनके सुख-दुख, हर्ष-शोक, शक्ति आदि सभी जन

साधारण के लिये बोधगम्य नहीं होते। आज के इस बुद्धिवादी युग में अति मानवीय पात्रों की पूजा नहीं होती; यहाँ तो मानव के गुणावगुण से सना व्यक्ति ही प्रधान है। आज कला, जन साधारण की सम्पत्ति है, अतः न तो वह सत्त्व गुण सम्पन्न, अपने से पृथक राम को समझ सकती है, न तमो गुण प्रधान रावण को; उसे तो देव-दानव की अपेक्षा मानव ही प्रिय है।

सामान्य पात्र भी दो प्रकार के हो सकते हैं, प्रथम प्रकार के पात्रों में उनका व्यक्तित्व ही प्रधान होता है, वे स्वयं अपना प्रतिनिधित्व करते है। यद्यपि मानवमात्र के सुख-दुख, राग अनुराग के भाव समान होते हैं, तथापि यदि पात्र विशेष की परिस्थिति, उसके भाव, एक समुदाय विशेष की वस्तु बन कर अभिव्यक्त हों, तब द्वितीय प्रकार के पात्रों की सृष्टि होती है; यही कारण है कि चिरन्तन मनोभावों पर आश्रित साहित्य, वर्ग विशेष की वस्तु न बन कर मानव मात्र के लिये ग्राह्य बन जाता है। सामान्य पात्र, पाठकों के अधिक समीप होते हैं; उनके सुख-दुख में वह सम्मिलित हो सकता है, उनके जीवन-दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख सकता है। आज का कलाकार सामान्य पात्रों को ही ग्रहण कर उनके जीवन की झांकी प्रस्तुत करता है।

पात्र चाहे लोकोत्तर हों या सामान्य, उनके चरित्र-चित्रण के लिये विभिन्न प्रकृति के व्यक्तियों के व्यक्तित्व, मनोभावों और प्रवृत्तियों के व्यापक एवं विशद अध्ययन, मनन और चिन्तन की आवश्यकता पड़ती है। एक ही परिस्थिति और घटना, समान श्रेणी के व्यक्तियों के जीवन में भिन्न २ प्रकार का परिवर्तन कर देती है; उनकी भावनाओं में महान अन्तर डाल देती है; चरित्र चित्रण के लिए सूक्ष्म दृष्टि से इनका

अध्ययन आवश्यक है । अपरिवर्तन-शील पात्रों का चरित्र पाठकों पर प्रभाव नहीं डाल सकता इसीलिए कहानीकार परिवर्तन शील पात्रों का ही चुनाव करता है और उन्हीं घटनाओं को कलात्मक रूप में उपस्थित करता है, जिन्होंने उसके जीवन को गति दी हो, परिवर्तन किया हो।

चरित्र चित्रण:—

उपन्यास की अपेक्षा कहानी में चरित्र चित्रण अत्यन्त ही कठिन है। कहानी में अवकाश नहीं होता कि पात्र की अवस्था, रूप, रंग, आकृति-प्रकृति, वेश-भूषा और सामाजिक स्थिति आदि का विस्तृत विवरण उपस्थित किया जाय; वहाँ तो चुने हुए शब्दों के कुछ प्रयोग ही पात्र से परिचय करा देते हैं। चरित्र चित्रण के लिए चार साधनों का उपयोग किया जाता है:—वर्णन, संकेत, कथोपकथन और घटना।

जब लेखक स्वयं पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करता है या किसी अन्य पात्र के द्वारा पात्र विशेष के चरित्र की आलोचना करवाता है, तब उसे वर्णनात्मक चरित्र-चित्रण कहा जाता है। आधुनिक काल में इसका आश्रय कम ही लिया जाता है क्योंकि किसी भी पात्र के सम्बन्ध में लेखक का निर्णय मान्य कर लेने से चरित्रगत रहस्य का सृजन नहीं हो सकता। यदि प्रारम्भ में किसी पात्र को लेखक क्रोधी बतलाये और अन्त में भी वह घटना चक्रों से निकलने के बाद क्रोधी ही बना रहा तो उस पात्र में आकर्षण कहां? और यदि उसके स्वभाव में परिवर्तन हुआ तो कार्य कारण की एक लम्बी शृंखला उपस्थित करनी पड़ती है। औत्सुक्य की रक्षा के लिये

भी पात्र की व्याख्या अनावश्यक है। कथानक के विकास के साथ साथ, पाठक को स्वयं पात्रों से परिचित होने देना चाहिए। प्रसाद जी की "आकाश दीप" कहानी 'इन्द्रजाल' से इसीलिये उत्कृष्ट है क्योंकि प्रथम में चरित्र चित्रण के लिये प्रारम्भ में ही व्याख्या का आश्रय नहीं लिया गया है और चम्पा तथा बुद्ध गुप्त रहस्यमय ढङ्ग से उपस्थित होते हैं।

सांकेतिक चित्रण में पात्रों के चरित्र की अभिव्यक्ति "सरल, उदार, दानी, क्रोधी, हट्टा-कट्टा" आदि कहकर नहीं की जाती। प्रकृति के विभिन्न दृश्यों को प्रतीक बनाकर लेखक कुछ ऐसे शब्द-चित्र प्रस्तुत करता है जो पात्र के चरित्र की विशेषता की ओर संकेत मात्र कर देते हैं। ये चित्र पात्र के मनोभावों तथा प्रवृत्तियों पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं।

जब दो पात्र आपस में वार्तालाप करते हैं तब उनके मनोभावों, विचारों और दृष्टिकोण का भी अनायास चित्रण हो जाता है। पात्रों के ये अभिव्यक्त भाव उनके चरित्र को मूर्त रूप देते हैं, इसे कथोपकथनात्मक चित्रण कहा जाता है। वस्तुतः चरित्र की स्पष्टता के लिए पात्र के बाह्य रूप को उपस्थित करना उतना आवश्यक नहीं जितना उसके अन्तः रूप को। इस अन्तः रूप को अभिव्यक्ति मिलती है कथोपकथन में; अतः चरित्र चित्रण के लिये यह साधन अधिक उपयुक्त समझा गया है, इसमें कहानी भी आगे बढ़ती है और चरित्रों का क्रमशः विकास भी मिलता है। कौशिक जी की कहानियों में चरित्र चित्रण का यही साधन अपनाया गया है।

विभिन्न घटनाओं के समय व्यक्ति का चरित्र जितना निखरा हुआ दिखाई पड़ता है उतना सामान्य स्थिति में नहीं।

कहानी में मुख्य घटना की पुष्टि के लिये अन्य कई छोटी छोटी घटनाओं का उपयोग किया जाता है। जब चरित्र चित्रण का कार्य इन घटनाओं से लिया जाता है तब वह घटनात्मक चरित्र चित्रण कहलाता है।

पात्रों का नामकरण भी उनके चरित्र की विशेषता प्रगट करता है। सामान्य पात्रों में सभी श्रेणी के व्यक्ति हो सकते हैं, इन सभी पात्रों का कहानी में प्रयोग करते हुए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उनकी प्रवृत्तियों के निदर्शन से, उनके जीवन के अन्तः रहस्यों के अनावरण से पाठकों पर बुरा प्रभाव न पड़े और न उनमें कुरुचि उत्पन्न हो। पाप-चित्रों की सृष्टि और अभिव्यंजना की अपेक्षा पुण्य चित्रों का सृजन करके कला व साहित्य की अधिक सेवा की जा सकती है।

कथोपकथन—

कथोपकथन एक नाटकीय तत्व है, अतः अभिनयात्मकता उसका प्रधान गुण है। चरित्र के विकास और कथानक की रचना में इसका प्रमुख भाग रहता है। कभी कभी तो सम्पूर्ण कहानी कथोपकथन द्वारा उपस्थित की जाती है। घटनाओं को गतिशील बनाने में भी इसका उपयोग किया जाता है। केवल वर्णन द्वारा प्रस्तुत की गई कहानी में लेखक का व्यक्तित्व भले ही उभर आए, परन्तु पात्रों का चरित्र अस्पष्ट ही रह जाता है। कथोपकथन को तीव्र और प्रभावशाली बनाने में शैली बहुत अधिक सहायता करती है। बंगला की कहानियों में तो इसका भरपूर उपयोग हुआ है। किसी भी पात्र के संभाषण द्वारा उसकी शिक्षा-दीक्षा, संस्कार और सभ्यता प्रगट हो जाती है। वाणी से ही पात्र के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। सरल, आकर्षक

और लाक्षणिक शब्दावली जहाँ कथोपकथन को सुन्दर बना देती है, वहां भावुकता का समावेश उसमें चार चाँद लगा देता है, पर यह भावुकता मानव प्रकृति के प्रतिकूल नहीं होनी चाहिए। संक्षेप में कथोपकथन को निम्नलिखित विशेषताओं से युक्त होना चाहिए:—

(१) कथोपकथन पात्र के अनुकूल, स्वाभाविक होना चाहिए, जिसमें उसका व्यक्तित्व निहित हो।

(२) भाषा परिस्थितियों के अनुकूल, सरल, शिष्ट, लाक्षणिक और चमत्कार पूर्ण हो।

(३) हास्य विनोद और व्यंग्य का समावेश कथोपकथन में मनोरंजकता उत्पन्न करता है।

(४) कथोपकथन का सबसे बड़ा गुण जिज्ञासा उत्पन्न करना है। जब एक पात्र का कथन पाठक पढ़े तो उसके हृदय में उत्तर पढ़ने की जिज्ञासा होनी चाहिए और उत्तर के साथ ऐसा प्रश्न सम्मिलित हो, जो उसके आगे के उत्तर को पढ़ने की आकांक्षा उत्पन्न करे; इस प्रकार जिज्ञासा को सुरक्षित रख कर कहानी के आकर्षण को उत्तरोत्तर बढ़ाया जा सकता है।

(५) सम्भाषण में नवीनता और अलौकिकता अवश्य होनी चाहिए। सामान्य वार्तालाप नीरसता और अस्पष्टता पैदा करते हैं।

(६) नाटक में प्रयुक्त संवाद अपूर्ण होते हैं और उनकी पूर्ति आङ्गिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक चारों प्रकार के अभिनयों से की जाती है। कहानी का अभिनय नहीं होता, अतः संवाद इतने अधिक पूर्ण होने चाहियें कि वे किसी भी प्रकार के अभिनय और संकेत आदि का अभाव न सूचित करें।

(७) अधूरे वाक्यों का प्रयोग नाटकीय सौन्दर्य की सृष्टि भले ही करें पर उनमें एक ऐसी अस्पष्टता रहती है जो अभिव्यक्ति के लिये अभिनय का सहारा ढूँढती है, अतः कहानी के कथोपकथन में इनका प्रयोग सावधानी से होना चाहिए, अन्यथा गति और तीव्रता प्रदान करने के स्थान पर ये अस्पष्टता का सृजन शीघ्र कर देते हैं।

ऐतिहासिक शैली में कहानी लिखने वाला कहानीकार भी कथोपकथन के उपयोग करने का लोभ संवरण नहीं कर पाता; भले ही वह पात्रों के कथन को अप्रत्यक्ष (Indirect) रूप में उपस्थित करे। रोचकता के लिये इस तत्व का कहानी में होना आवश्यक है।

वातावरण—

कहानी कल्पना लोक का स्वप्निल चित्रण नहीं, जीवन की जगमगाती वास्तविक झलक है। हमारा जीवन, देश, काल और युग विशेष की परिस्थितियों से सम्बन्धित और प्रभावित होता है; पात्र भी जीवन के प्रतीक हैं, अतः वे भी इनसे अछूते नहीं रह सकते। कहानी में, देश, काल और परिस्थितियों के संकलन या समीकरण को शब्द चित्रों के सहारे मूर्त रूप देना ही वातावरण प्रस्तुत करना है। अभिप्रेत प्रभाव की सिद्धि के लिये इसकी आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि यह ऐसा जादू है, जो पाठक के मन और दृष्टि पर माया की छाया डाल देता है और हमें उस लोक में विचरण कराने लगता है जहाँ कहानी के पात्र सजीव और चेतन बने घटनाओं की रंगस्थली में अपना अपना अभिनय पूरा करते हैं।

ऐतिहासिक काल-खण्ड का प्रतिनिधित्व करने वाली कहानियों में तो उपयुक्त वातावरण का चित्रण और भी आवश्यक हो जाता है। यह ठीक है कि जीवन के ऐकान्तिक और चिर सत्य मनोभावों का चित्रण भी इनमें किया जाता है, किन्तु अभिव्यक्ति तो किसी विशिष्ट देश, काल और परिस्थिति में ही होती है, अतः इतिहास और प्रकृति विरोधी वातावरण प्रस्तुत करना, रमणीगता की हत्या करना है। यद्यपि सामाजिक कहानियों में समाज की सम्पूर्ण बाह्य और आन्तरिक प्रवृत्तियों का चित्रण नहीं हो सकता, पर जिस प्रवृत्ति विशेष को ग्रहण किया जाता है; उससे सम्बन्धित आचार-विचार, रीति-नीती का ध्यान रखना अनिवार्य है। ऐतिहासिक कहानियों में वर्ण्य युग की सभ्यता और संस्कृति से विपरीत चित्रण उपहासास्पद होता है। न तो राम को आधुनिक वेशभूषा से सज्जित किया जा सकता है और न राणा प्रताप को आधुनिक शस्त्रों से; किन्तु आज के भिन्न वातावरण में रहने वाला मानव-मन, राम को मृग चर्म और प्रताप को भाला तलवार से सज्जित देख कर तभी उनके त्याग और वीरता से आकृष्ट हो सकेगा जब उसकी कल्पना शक्ति को जगा कर, उसे भी उनकी ही सी परिस्थिति में डाल दिया जाय। जिस प्रकार रंगमंच को, वास्तविकता सम्पन्न बनाने के लिये अनेक उपकरणों से उसे सजाया जाता है, उसी प्रकार कहानी को शब्द-चित्रों और दृश्य विधानों से। दोनों का ही उद्देश्य उपयुक्त वातावरण का सृजन है, जिससे दर्शक या पाठक का मन सहज भाव से सब कुछ स्वीकार करले। कहानी में भी साहित्य के अन्य अंगों की तरह ही सम्भव सत्य, प्रयुक्त होता है। सम्भाव्य को सहज ग्राह्य बना देने में ही

कलाकार की कलात्मकता है और यह कार्य वह वातावरण के द्वारा पूरा करता है।

भाव प्रधान कहानियों में प्रकृति का सचेतन और संवेदन शील रूप उपस्थित करके, कहानीकार वातावरण को प्रस्तुत करता है। प्रकृति के इस रूप को चित्रित करते हुये वह घटनाओं का पूर्वाभास दे देता है:—

"अनन्त जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट उठा सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कराने लगी। सागर शान्त था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बंदी मुक्त हैं।" (आकाश दीप)

उषा के मधुर आलोक का फूटना, किरणों और लहरों की सृष्टि का मुस्कराना और तूफान से उद्वेलित सागर का शान्त होना स्पष्टतः विपद् ग्रस्त चम्पा और बुद्ध गुप्त की विजय तथा उनके जीवन के महान परिवर्तन की ओर संकेत करते है। वातावरण को सृष्टि कवित्व पूर्ण भी हो सकती है और भावनाओं को अनुप्राणित करने वाली लाक्षणिक-सौन्दर्य-सम्पन्ना साधारण भी। लेखक इच्छानुकूल, अपनी विशिष्ट शैली के सहारे परिपार्श्व की अवतारणा और वातावरण का चित्रण करता है, अतः वातावरण को उपस्थित करने में शैली का सह--योग तो होता ही है कहानीकार की रुचि भी उस में रंगीनी उत्पन्न करती है।

कतिपय कलाकार "दृश्य चित्रों की अविच्छन परम्परा" को ही कहानो कहते हैं, किन्तु कहानी केवल शब्द-चित्र मात्र नहीं है। दृश्य-चित्र साधन है—वातावरण को मूर्तिमान करने का, और वातावरण साधन है कहानी में अभीष्ट प्रभाव की सिद्धि का।

अतः साधन के साधन को भी साध्य समझ लेना न तो उचित है और न ही वांछनीय। आधुनिक काल में वातावरण कहानी का एक आवश्यक तत्त्व है।

शैली—

भाषा मनोभावों की अभिव्यक्ति का साधन है, और शैली, उस साधन का उपयोग करने की रीति। सुन्दर भाव, उत्कृष्ट कल्पना और गहन विचार, मोहक शैली के अभाव में मर्म-स्पर्शी नहीं बन सकते। सरल, सुबोध और सरस शैली कहानी के प्रभाव को व्यापक बना देती है, उक्ति प्रधान और अलंकृत शैली उस में जान डाल देती है। विचारात्मक और गूढ़ रचना शैली की अपेक्षा भावात्मक प्रणाली ही कहानी में रोचकता उत्पन्न करती है। शब्द, वे रेखायें हैं जिनके टेढ़े मेढ़े प्रयोग से कलाकार अपने भाव चित्रों को अंकित करता है। अतः शब्द शक्ति का ज्ञान और उसके प्रयोग की क्षमता ही उसके चित्रों को मूल्यवान बनाती है। उक्तियों और अलंकारों का प्रयोग अभिव्यंजना की सामर्थ्य को बढ़ा देता है—उदाहरण के लिये—"रघू ने ठंडी सांस खींच कर कहा – मुलिया, घाव पर नोन न छिड़क। तेरे ही कारण मेरी पीठ में धूल लग रही है" (अलग्योझा, में प्रेमचन्द जी)। घाव पर नोन छिड़कना और पीठ में धूल लगना इन दो मुहावरों के प्रयोग ने ही रघू से अपनी सम्पूर्ण अन्तर्वेदना कहला दी है।

कहानी में अलंकृत भाषा, भावाभिव्यक्ति और दृश्य चित्रण, दोनो के लिये ही प्रयुक्त होती है—

"जाह्नवी अपने बालू के कम्बल में ठिठुर कर सो रही थी" (प्रसाद जी की 'भिखारिन')

"प्रभात की हेम किरणों से अनुरंजित नन्हीं नन्हीं बूँदों का एक झोंका स्वर्ण मल्लिका के समान बरस पड़ा। (प्रसादजी—पुरस्कार)

प्रथम उदाहरण में है रूपक द्वारा भावाभिव्यक्ति और द्वितीय में उपमा द्वारा दृश्य चित्रण।

अनुप्रासों का अतिशय प्रयोग कविता में छटा की सृष्टि भले ही करे, कहानी की भाषा में तो वह कृत्रिमता ही उत्पन्न करता है:—"किस प्रभाव से भगवान की भक्ति भभकी" ('उग्रजी की प्रार्थना')। ऐसे प्रयोग मनोविनोद कर सकते हैं प्रभाव का सृजन नहीं।

अपेक्षित ओज, माधुर्य और प्रसाद गुण सम्पन्न भाषा में प्रवाह की आकांक्षा, घटना प्रधान कहानी अधिक रखती है। बीच बीच में हास्य, विनोद और व्यंग्य का प्रयोग, भावोद्रेक के लिये आवश्यक है। कथावस्तु, पात्र, चरित्रचित्रण, कथोपकथन, वातावरण आदि कहानी के सभी मूल तत्त्वों के समुचित प्रयोग के लिये शैली का सौष्ठव अनिवार्य है। शैली वह स्वच्छ धारा है जहाँ कला के कमनीय कुसुम खिलते हैं, भावों की सरसता और मिठास भरी रहती है।

कहानी लिखने की कई प्रणालियां प्रचलित हैं, जिनमें से लेखक अपनी रुचि के अनुसार किसी भी प्रणाली को अपना सकता है, इनमें पाँच मुख्य हैं:—

(१) आत्म चरित प्रणाली
(२) ऐतिहासिक अथवा वर्णनात्मक प्रणाली
(३) कथोपकथनात्मक प्रणाली
(४) पत्रात्मक प्रणाली
(५) डायरी प्रणाली

आत्म चरित प्रणाली—में कहानी लेखक या कहानी का कोई पात्र इसमें आप बीती सुनाता है। सम्पूर्ण कहानी 'मैं' से लिखी जाती है, इसी लिये यह 'उत्तम पुरुषात्मक' शैली भी कही जाती है। इस मैं का प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है—

(१) कहानी का एक पात्र प्रारम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण कहानी स्वयं कहता है—'सुदर्शन' की 'अँधेरी दुनिया' शीर्षक कहानी में 'रजनी' 'मैं' द्वारा ही सारी कहानी सुनाती है—"मैं पंजाबिन हूं, परन्तु मेरा नाम बंगालियों का सा है ......।"

(२) कहानी के कई पात्र, क्रमशः आप बीती सुनाते हैं और उनकी सुनाई हुई घटनायें शृंखलाबद्ध होकर कथानक को पूर्ण बना देती हैं। इस शैली में दो या तीन से अधिक पात्रों के समावेश से कथानक में विस्तार और विशृङ्खलता उत्पन्न हो जाती है। चरित्रचित्रण की पूर्णता में यह शैली सहायक होती है। उदाहरण के लिये—सुदर्शन जी की ही 'कवि की स्त्री' कहानी ली जा सकती है, जिसे, सत्यवान, सावित्री और मनिराम ने अपने जीवन की घटनाओं को "मैं" रूप से सुना कर कहानी पूरी की है।

(३) कहानी लेखक स्वय 'मैं' रूप में एक पात्र बन जाता है, तथा वह अन्य पात्रों के साथ मिलता-जुलता है, उनसे बातें करता है, किन्तु लेखक का कर्त्तव्य उसे बाध्य करता है कि कथानक की गति को बढ़ाने के लिये सचेष्ट भी रहे; उसकी यह चेष्टा, 'मैं' के चरित्र चित्रण की अपेक्षा अन्य पात्रों के भावों और विचारों के निरीक्षण तथा अभिव्यक्ति की ओर अधिक उन्मुख रहती है। अज्ञेयजी की 'रोज' कहानी मे 'मैं' स्वयं कहानी

का एक पात्र है, किन्तु लेखक की तटस्थता को छोड़कर वह पात्रों के साथ कहां घुल-मिल सका है ? मालती के प्रति सहानुभूतिशील होकर भी, वह उसके जीवन से, उसकी गति से न तो एकात्मता स्थापित कर सका, न पूर्णतः दर्शक की भाँति अलग ही रह सका है।

इस शैली के प्रथम और द्वितीय रूप में प्रत्येक वर्णन करनेवाला पात्र "मैं", अपने अन्तस्तल के छोटे से छोटे भाव, विचार और आवेगों की अभिव्यंजना जहां स्वाभाविक रीति से कर लेता हैं, वहाँ अन्य पात्रों के चरित्र अस्पष्ट रह जाते हैं। ऐसे ही अन्तिम रीति में "मैं" दूसरों के चरित्र का विश्लेषण जितनी सूक्ष्मता से कर सकता है स्वयं अपना नहीं। इस शैली में कहानी लेखक को 'आत्मकथा' के बन्धनों के भीतर बँध कर ही कथानक को पूर्ण करना पड़ता है।

ऐतिहासिक प्रणाली:—

इस में कहानीकार एक तटस्थ इतिहास लेखक की भाँति सारी कथा का वर्णन करता है; अतः इसमें "वह" की प्रधानता होती है। दूसरों की कहानियों को अन्य जनों से कहने के कारण ही इसे "अन्य पुरुषात्मक" शैली भी कहते हैं। यह शैली अधिक लोक प्रिय है। श्रीभगवती प्रसाद वाजपेयी, प्रेमचन्द जी आदि की अधिकांश कहानियाँ इसी शैली में लिखी गई हैं-उदाहरण के लिये प्रेमचन्द जी की "बूढ़ी काकी" कहानी की शैली देखिये:—"बुढ़ापा बहुधा बचपन का पुनरागमन हुआ करता है। बूढ़ी काकी में जिह्वा स्वाद के सिवा और कोई चेष्टा न थी और न अपने कष्टों की ओर आकर्षित करने को रोने के अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा"

ही . ...”। “उनके पति देव को स्वर्ग सिधारे कालान्तर हो चुका था ....।” वातावरण के चित्रण और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ने इस शैली को अधिक चमत्कार पूर्ण बना दिया है।

कथोपकथन प्रणाली :—

कथोपकथन कहानी के कई तत्त्वों में से एक है, अतः सम्पूर्ण कहानी केवल एक ही तत्त्व संवाद रूप में लिखी जाकर, वातावरण, दृश्य चित्रण आदि के अभाव में आकर्षक न बन सकेगी, इसीलिये संवादों के बाद स्वयं लेखक निर्देश करता चलता है "मोहन ने कहा......सोहन ने उत्तर दिया" आदि। इस निर्देश में ही वह पात्रों की आयु, वेश-भूषा, आकार-प्रकार, हाव-भाव आदि का भी वर्णन करता चलता है, जो पात्रों के चरित्र को स्पष्ट झलका देते हैं; इसलिये कई विद्वान् इस प्रणाली का समावेश भी 'ऐतिहासिक' के भीतर ही कर लेते हैं। ऐतिहासिक प्रणाली में कहानी लेखक का वर्णन ही घटना क्रम को आगे बढ़ाता और कथानक को गति देता है, पर कथोपकथनात्मक प्रणाली में लेखक का वर्णन केवल चरित्र-चित्रण या परिस्थितियों का दर्शन मात्र कराता है; कथा को आगे बढ़ाने का कार्य संवाद ही सम्पन्न करते हैं; यहाँ दोनों में मुख्य अन्तर है। श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानियों में यही प्रणाली अपनाई गई है—उनकी 'रक्षाबन्धन' 'ताई' और 'विद्रोही' आदि कहानियों में यह शैली उपलब्ध हो जायगी—

'माँ मैं भी राखी बांधूगी।

श्रावण की धूम-धाम है। नगरवासी स्त्री पुरुष बड़े आनन्द तथा उत्साह से श्रावणी का उत्सव मना रहे हैं। बहनें

भाइयों के और ब्राह्मण अपने यजमानों के राखियाँ बाँध बाँध कर चाँदी कर रहे हैं। ऐसे ही समय एक छोटे से घर में एक दस वर्ष की बालिका ने अपनी माता से कहा—'माँ मैं भी राखी बाँधूगी।'

उत्तर में माता ने एक ठंढी सांस भरी और कहा—किसके बांधेगी बेटी—आज तेरा भाई होता तो.........।'

इनकी "विद्रोही" शीर्षक कहानी में निर्देशों का कम से कम प्रयोग हुआ है तथा उसमें ओजपूर्ण संवादों ने नाटकीय अभिव्यंजना का अधिक आश्रय लिया है—

"वन्दी ! मान जाओ, तुम्हारे उपयुक्त यह कार्य न होगा।
चुप रहो, तुम क्या जानो।
इसमें वीरता नहीं है, अन्याय है।
बहुत दिनों की धधकती हुई ज्वाला आज शान्त होगी।"

रेडियो के लिये लिखी जाने वाली कहानियों में इस शैली का अपनाना आवश्यक है।

पत्रात्मक प्रणाली:—

'इसमें लेखक पत्रों के रूप में अपनी कहानी लिखता है। इसका प्रचार अधिक नहीं हो सका है, केवल प्रयोग के लिये ही कुछ कहानियां लिखी गई हैं। यद्यपि पत्र द्वारा लेखक अपने हृदय की सम्पूर्ण अनुभूतियों को निस्संकोच व्यक्त कर सकता है, किन्तु पत्र लेखन के आवश्यक नियमों का पालन करने के कारण कथा की एकसूत्रता तो रहती ही नहीं, वातावरण का भी उपयुक्त सृजन नहीं हो पाता, जो रमणीयता के लिये अनिवार्य है। इस प्रणाली

द्वारा चरित्र चित्रण भी ठीक ढंग से नहीं हो पाता। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'एक सप्ताह' सुदर्शन जी की 'बलिदान' और प्रसाद जी की 'देवदासी' कहानियां इस प्रणाली के उदाहरण है। पत्र लिखने के आवश्यक नियमों का पालन करने में किस प्रकार अनावश्यक अंशों का भी समावेश करना पड़ता है, यह "एक सप्ताह" के इस उद्धरण से स्पष्ट हो जायेगा:—

गुल मर्ग

१४ श्रावण,

"भाई कमल,

सुबह नौ बजे बिस्तर से उठा हूँ, अभी तक नींद की खुमारी नहीं टूटी। कल बहुत दिनों के बाद घुड़सवारी की थी; अतः टांगें कुछ थकी सी प्रतीत होती है। आज कहीं नहीं जाऊंगा।"

उपरोक्त कहानियों में कई कई पत्रों को मिलाकर कथानक पूरा किया गया है। इस शैली में कथा की क्रमबद्धता के लिये बहुत प्रयास करना पड़ता है। प्रभाव का सृजन तो प्रायः असम्भव सा ही होता है। श्री विनोद शंकर व्यास की "अपराधी" कहानी पत्रात्मक शैली का नवीन उदाहरण है। यह एक ही पत्र में समाप्त हो गई है, अतः परम्परा निर्वाह के लिये इसमें बार बार शिष्टता प्रदर्शक अनावश्यक अंशों का समावेश नहीं है। इस कहानी का प्रारम्भिक अंश भी, जिसका कथानक से कोई संबंध नहीं है, अनावश्यक न होकर उसके लिये वातावरण प्रस्तुत करने का कार्य करता है, अतः यदि इस अंश को निकाल दिया जाय तो यह पूर्णतः आत्मचरित प्रणाली की सीमा में आ-जायेगी।

पत्र का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

काशी
२-११-२७

भैया केशव !

तुमने इस बार दो सप्ताह बाद मेरे पत्र का उत्तर दिया है। तुम बीमार थे, अब अच्छे हो गये, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

तुम कब तक निराश प्रेमी के भांति अपना जीवन व्यतीत करोगे............?"

मूल कथा का आरम्भ सर्वथा नये रूप में हुआ है। जैसे—

"उस दिन अमावस्या की काली रात थी। बड़ा सन्नाटा था। मैं नौ बजे ही सो गया था। आधी रात को शोर हुआ, मैं उठकर बैठ गया ......।"

डायरी प्रणाली:—

जब डायरी के पन्नों द्वारा कहानी की सम्पूर्ण घटनाओं का वर्णन होता है तब इसे 'डायरी प्रणाली' कहा जाता है। इसमें अतीत की घटनाओं का भावुकता पूर्ण उल्लेख किया जाता है। इस शैली की कोई भी महत्त्व पूर्ण कृति प्राप्य नहीं है। पत्रात्मक और इस प्रणाली में मूलतः कोई अन्तर नहीं है। डायरी में तिथि निर्देश से ही काम चल जाता है जब कि पत्र में तिथि, स्थान तथा शिष्टाचार व्यक्त करने वाले कतिपय वाक्य आवश्यक हैं।

कहानी का शीर्षक:—

अत्यन्त ही आकर्षक होना चाहिये। ध्यान आकृष्ट करने एवं पढ़ने की जिज्ञासा उत्पन्न करने का कार्य शीर्षक पर

ही रहता है। शीर्षक, कहानी की किसी न किसी विशिष्टता का प्रतीक होता है। प्रमुख पात्र के नाम के साथ ही कहानी की कोई विशेष घटना, पात्र की प्रवृत्ति या कहानी में अभिव्यक्त भावना, शीर्षक निर्माण में सहायता पहुंचाती हैं; उदाहरण के लिये क्रमशः, 'बिसाती', 'सत्याग्रह', 'नशा' और 'मंत्र' आदि शीर्षक लिये जा सकते हैं। शीर्षक देने के अनेक ढंग है—

(क) एक शब्द के द्वारा—'पुरस्कार', 'ताई' आदि।

(ख) दो शब्दों के द्वारा—आकाश-दीप, जूठा आम और 'भूली बात' इत्यादि।

(ग) तीन शब्दों के द्वारा अभिव्यक्ति के लिये और भी आश्रय मिल जाता है, जैसे:—'शतरंज के खिलाड़ी,' 'उसने कहा था' 'हार की जीत।'

(घ) पूरे वाक्य, प्रचलित उक्तियों या मुहावरों के द्वारा शीर्षक देने की भी परम्परा चल पड़ी है। यह परम्परा अंग्रेज साहित्यकारों ने डाली है और इस प्रकार शीर्षक लगाने की प्रणाली पश्चिमी साहित्य की देन कही जा सकती है:—जैसे "मुगलों ने सल्तनत बख्श दी" (वाक्य), 'घूंघट के पट खोलरी' या 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' (प्रचलित उक्तियां)। शीर्षक एक या अनेक शब्द का हो, कहानी के साथ उसका सामंजस्य अवश्य होना चाहिये।

कहानी का आरम्भ:—रोचक, रहस्यमय और आकर्षक हो तो पाठक की रुचि स्वभावतः उस ओर खिच जाती है। दुरारम्भ कहानी का सबसे बड़ा दोष माना जाता है। कहानियों का आरम्भ अधिकतर तीन प्रकार से होता है:—(१) संवाद द्वारा (२) वर्णन द्वारा तथा (३) किसी घटना के उल्लेख से—

संवाद द्वारा कहानी का आरम्भ सबसे सुन्दर माना जाता है, क्योंकि नाटकीय व्यंजना हृदय-वीणा में झंकार तो उत्पन्न करती ही है, पात्रों की अपरिचितता स्वतः रहस्य की सृष्टि कर देती है पात्रों के कथन सुदूरतम प्रदेश से आते हुये मधुर स्वर-तरंगों के समान हृदय को आप्लावित कर देते हैं। 'आकाश दीप' उन सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है, जिसका सफल आरम्भ संवाद द्वारा हुआ है:—

'वन्दी'।
"क्या है ? सोने दो"
"मुक्त होना चाहते हो ?"
"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर। चुप रहो।"

इन चार उक्तियों को पढ़ते ही पढ़ते, पाठक जिज्ञासा की बाढ़ में बहने सा लगता है-वह कौन है, जो वन्दी होकर भी मुक्ति की अपेक्षा नींद को अधिक प्रिय समझता है ? पात्र रहस्यमय वन कर खड़े हो जाते हैं; इन्हें आप पहचानेंगे, पर कहानी पढ़ लेने के बाद ही, उसके पूर्व नहीं।

वर्णन द्वारा कहानी का आरम्भ करते हुये लेखक स्वयं अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है; उसकी ये भावनायें कई रूपों में सामने आती हैं:—

(अ) कहानीकार वातावरण प्रस्तुत कर कथानक की पृष्ठ भूमि तैयार करता है; इसका उदाहरण 'उसने कहा था' कहानी है, जिस में अमृतसर का दृश्य-चित्र उपस्थित किया गया है।

(ब) किसी पात्र विशेष के चरित्र का विश्लेषण करते हुये भी वह कहानी आरम्भ करता है। प्रेमचन्द जी की कहानियों

का आरम्भ प्रायः इसी शैली पर हुआ है, "बूढ़ी काकी" इसका उदाहरण है।

(स) सामान्य वर्णन द्वारा प्रारम्भ की गई अनेकों कहानियां उपलब्ध होती हैं। भाषा कवित्वमयी हो या साधारण, ऐसे आरम्भ में उतना आकर्षण नहीं होता—प्रेमचन्द जी की 'घर जमाई' इसका उदाहरण है: –

"हरिधन जेठ की दुपहरी में ऊख में पानी देकर आया और बाहर बैठा रहा। घर में से धुआं उठता नजर आता था। छन छन की आवाज आ रही थी।"

घटना द्वारा आरम्भ की गई कहानियां, प्रारम्भ में कौतूहल का सृजन कर देती हैं; कथानक में क्रियाशीलता आ जाती है और औत्सुक्य में गति। श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी' की 'कवि' शीर्षक कहानी का आरम्भ ऐसे ही हुआ है:—

"देव, विहारी, केशव, तुलसी आदि कवियों ने स्वर्ग में पहुँच कर जो सबसे अद्भुत कार्य किया, वह था, भारती के द्वार पर सत्याग्रह। देवलोक में खलबली मच गई। स्वयं विधाता पधारे। कवियों को समझाया, पर सब व्यर्थ हुआ।"

कहानी का अन्त—भावनात्मक कहानियों को छोड़ कर प्रायः अन्य सभी प्रकार की कहानियों का अन्त, वातावरण, चरित्र विकास और कथानक की गति के अनुकूल ही होता है। रहस्याभिव्यक्ति तथा अन्त के साथ ही पाठक की जिज्ञासा शान्त हो जाती है और वह तृप्ति तथा सन्तोष की उपलब्धि कर लेता है। भावना प्रधान कहानियाँ, अन्त में एक ऐसी अतृप्ति, टीस और कसक को जन्म देती हैं, जिससे पाठक का संवेदन-

शील हृदय कुछ देर तक छटपटाता रह जाय। जब बाह्य जगत की घटनाओं में ही क्रम नहीं उपलब्ध होता, तब अज्ञात और रहस्यमय भाव जगत में क्रमबद्धता किस प्रकार दृष्टि गोचर हो सकती है। कहानी लेखक तो उसी भाव-क्रम को ग्रहण भी करता है जिसके अन्त में ऐसा मोड़ हो, जिसके कारण कथानक की दिशा में अचानक परिवर्तन हो जाय। परिस्थितियों की ठोकर, बाह्य और अन्तः, दोनो ही दुनियाँ में जीवन की गति को मोड़ देती है; स्वस्थ और दृढ़ निश्चयी मन भी विचलित हो जाता है। जब कहानी में लेखक, भाव-जगत के इसी चित्र की ओर संकेत करता है, तब सामान्य पाठक के लिये वह पहेली और समस्या बन जाती है। भावना प्रधान कहानियों का प्रभाव, चाहे वह संवेदनात्मक ही हो, अधिक पड़ता है— उदाहरण के लिये प्रसाद जी की 'बिसाती' का अन्त देखिये:—

"बिसाती अपना सामान छोड़ गया, फिर लौट कर नहीं आया। शीरीं ने बोझ तो उतार लिया पर दाम नहीं दिया।"

उनकी 'आकाश दीप' भी, चम्पा की ऐकान्तिक स्नेह-सिक्त-दग्ध भावना द्वारा, पाठक को करुण-कल्पना की दुनिया में छोड़ देती है। गोविन्द वल्लभ पन्त की "जूठा आम" शीर्षक कहानी का अन्त भी इसी प्रकार पाठक को अपूर्ण ज्ञात होता है, यद्यपि वह भाव-जगत में एक विशिष्ट भाव के प्रतिपादन में स्वयं पूर्ण है। कहानी किसी भी प्रकार की हो, उसका अन्त चमत्कार पूर्ण और स्थायी प्रभाव डालनेवाला होना चाहिये।

उद्देश्य:—

काव्य की भांति ही कहानी का उद्देश्य 'स्वान्तः सुखाय' नहीं है; 'रस' की सृष्टि जिस प्रकार काव्य का मुख्य लक्ष्य है उसी प्रकार कहानी का भी। कला की अभिव्यक्ति के तीन कारण होते हैं—(१) कलाकार जब भी बाह्य वस्तुओं या दृश्यों से प्रभाव ग्रहण करता है और उसका संवेदन शील हृदय तीव्र उद्वेलन को सँभालने में असमर्थ सा होकर उसे वाणी द्वारा बाहर प्रवाहित कर देता है, तभी कला को मूर्त रूप मिलता है। अथवा जब पूर्व संचित अनुभूतियों के उपकरणों से, वह कल्पना द्वारा विभिन्न भावों को अभिव्यक्त करने के लिये स्वतः उन्मुख होता है तब या जब वह किसी विचार को कल्पना के सहारे कलात्मक रूप देकर प्रस्तुत करता है, उस समय; उक्त तीन कारणों में क्रमशः भाव, कल्पना और बुद्धि पक्ष की प्रधानता होती है। उत्कृष्ट कला में तीनों का सुन्दर समन्वय अपेक्षित है, क्योंकि इनके समन्वित रूप का ही स्थायी प्रभाव पड़ता है।

कहानी कार भी अपने भाव और विचारों की अभिव्यक्ति के लिये, कल्पना के शब्द चित्र द्वारा पाठकों के हृदय को भाव-निमग्न कर देता है, इस भाव-निमग्नता की अलौकिक अनुभूति में ही रस मिलता है; अतः जो कहानी हृदय के लिये आस्वाद्य बन कर उसे पुलकित करे, वही सफल मानी जाती है। सौन्दर्य बोध और हृदय को स्पर्श कर अपनी मार्मिकता से पुलकित करा देने मात्र से कहानी का उद्देश्य पूरा हो सकता है, कहानीकार का नहीं; क्योंकि उसकी भावना की कलात्मक अभिव्यक्ति, 'अर्थ विशेष' रखती है जो उसके उद्देश्य में दिखाई पड़ती है।

उच्च कोटि के उद्देश्य में अधिक से अधिक व्यक्तियों को प्रभावित करने की शक्ति होती है। कहानी जीवन के अधिक समीप होती है, अतः उसमें जीवन की यथार्थता ही अधिक झलकती है, किन्तु कलाकार केवल यथार्थ जीवन के नग्न-चित्रण मात्र से सन्तुष्ट नहीं हो सकता, वह आदर्श की प्रतिष्ठा करना चाहता है, जिससे पृथ्वी को स्वर्ग और जीवन को सत्य और देवत्व का प्रतीक बनाया जा सके। यथार्थ से आत्म-तुष्टि नहीं हो सकती और आदर्श कभी कभी जीवन से इतना दूर होता है कि हम उसकी धुँधली छाया मात्र ही देख पाते हैं, अतः आदर्श और यथार्थ के समन्वय से "आदर्शोन्मुख यथार्थ वाद" की नींव पड़ी। कहानी चाहे जिस भी श्रेणी की हो, जिस विचार का लेखक उसे लिखे, उक्त तीनों में से ही किसी न किसी तथ्य की प्रतिष्ठा होगी। अपने कार्य में मन्दबुद्धि भी निरुद्देश्य प्रवृत्त नहीं होते। 'कला कला के लिये' मानने वाले भी निरुद्देश्य नहीं लिख सकते; वे जिस भावना का प्रदर्शन करना चाहते हैं वही उनका उद्देश्य है; इसे हम उद्देश्य हीन उद्देश्य कह सकते हैं।

कहानी लेखक को अपना उद्देश्य अप्रत्यक्ष रीति से ही व्यक्त करना चाहिये। सफल कहानी में उदारता, सहानुभूति, प्रेम, त्याग आदि उच्च कोटि के गुणों को ही जगाने एवं स्थापित करने की क्षमता होती है। कहानी में मनोरंजन के साथ पढ़ने वाला प्रभाव स्वल्प ही क्यों न हो, कुरुचि उत्पन्न करने वाला नहीं होना चाहिये। कहानी का प्राण अन्तर्जीवन की सूक्ष्म गुत्थियों को सुलझाना ही है। कहानीकार के उद्देश्यों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—(१) किसी विशिष्ट प्रवृत्ति को

जगा कर हृदय को संवेदनशील बनाना (२) विचार या सिद्धान्त विशेष का प्रतिपादन और प्रचार करना (३) सुन्दर भाव चित्रों द्वारा मनोरंजन करना।

कहानी में आदर्शवाद और यथार्थवाद:—

आधुनिक युग बुद्धिवाद का युग है। आज प्रत्येक वस्तु तर्क की कसौटी पर कसी जा कर ग्राह्य या अग्राह्य ठहराई जाती है। बुद्धिवाद सर्व प्रथम रूढ़ि गत अंधविश्वासों का नाश करता है और करता है प्रस्तुत उपकरणों द्वारा प्रयोगात्मक रीति से नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन। पश्चिमी साहित्य और सभ्यता ने न केवल चिन्तन के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही दिया, अपितु भावों और विचारों को भी प्रभावित किया। आधुनिक साहित्य में यथार्थवाद की ओर झुकाव इसी बुद्धिवाद की देन है। राजनीति में प्रचलित मतवादों को पाश्चात्य जगत ने साहित्य में भी अपनाया, जिसके कारण अनेक साहित्यिक वादों की सृष्टि हुई। आदर्शवाद और यथार्थवाद इन्हीं वादों के चिन्तन रूप हैं।

आदर्शवाद के अनुसार कलाकार को अपनी कृतियों में उन्हीं विषयों पर प्रकाश डालना चाहिए जो समाज के लिए कल्याणकारी हों। आदर्शवादी अपनी रचना में मानव के समक्ष उन्हीं उज्ज्वलतम अनुभूतियों को रखना चाहता है, जिनकी रग रग में जीवन का दर्शन अबाध गति से बहता हो, जिनकी लहर लहर में सत्य की वह भावना हो, जो हमें प्रकाश के एक पुनीत प्रवेग में डुबा दे। वह यह अनुभव करता है कि समाज में घृणा, द्वेष, पाप, आदि विद्यमान हैं, पर इन्हें अश्लील ढंग

से चित्रित कर मानव की निम्नतर वृत्तियों को उभारना उचित नहीं; 'जीवन कैसा है' की अपेक्षा, 'कैसा होना चाहिए' के चित्रण में वह अधिक विश्वास करता है।

यथार्थवाद के अनुसार कोई भी कलाकार जीवन के यथार्थ और सच्चे रूप से आँखें बंद नहीं कर सकता। यथार्थवादियों का कहना है कि जीवन में पुण्य ही पुण्य नहीं, पाप भी है, प्रेम ही नहीं, घृणा भी है, उदात्तवृत्तियों के साथ अनुदात्तवृत्तियाँ भी है, और प्रकाश की जगमगाती किरणों के साथ अंधकार की गहनतम छाया भी: इसलिए शतुर्मुर्ग की तरह बालू में आँखें गाड़ लेने से जीवन की दुर्बलताएँ नहीं छिप जाएंगी। मानव की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वह अपनी दुर्बलताओं की ओर से आँखें बंद कर लेता है और जिसका परिणाम होता है अपने यथार्थ रूप को भूल जाना; उसकी ये दुर्बलताएँ अप्रत्यक्ष रूप से उसके जीवन की प्रगति में बाधक बन जाती हैं। सच्चा कलाकार मानव को मानव रूप में अंकित करता है और अपनी प्रभावशाली रचनाओं द्वारा उसके गुणों और अवगुणों को समान रूप से अभिव्यक्ति देता है। कलाकार का कार्य सच्चे और यथार्थ चित्र को उपस्थित कर देना मात्र है, उसे इससे कोई मतलब नहीं कि पाठक उसके प्रभाव को किस रूप में ग्रहण करता है।

जीवन जैसा है, यदि उसी का चित्रण किया जाय तो मानव कल्याण और उसकी प्रगति का क्या होगा? न तो मानव पूर्ण है और न मानव को सच्चे रूप में उपस्थित करने वाला साहित्य। भारतीय परम्परा के अनुसार जीवन का परम लक्ष्य परम ज्योति की उपलब्धि है, साहित्य और कला उस

लक्ष्य की प्राप्ति के साधन मात्र हैं; अतः जो इन साधनों को ही साध्य मानने की भूल करते हैं वे जीवन को तिल मात्र भी प्रगति पथ पर अग्रसर नहीं कर सकते। मानव अपने जीवन पथ में तो अंधकार में रहता ही है, 'ज्योतिर्गमय' की प्रेरणा जो साहित्य दे सके वही श्रेय की सिद्धि कर सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि अपने वास्तविक रूप को तो साहित्य द्वारा मनुष्य समझे ही, उससे ऐसी प्रेरणा भी प्राप्त करे, जो उसकी दुर्बलताओं को दबा कर सबल गति से लक्ष्य की ओर बढ़ने में सहायता दे सके। इस लक्ष्य की पूर्ति तभी हो सकती है जब यथार्थ और आदर्श का सुन्दर समन्वय साहित्य में किया जाय।

श्री प्रेमचन्द जी ने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' को ही श्रेयस्कर और वाञ्छनीय माना है--" कायर यह कहने से बहादुर न हो जाएगा कि तुम कायर हो। हमें यह दिखलाना पड़ेगा कि उसमे साहस, बल, धैर्य सब कुछ है, केवल उसे जगाने की जरूरत है। साहित्य का सम्बन्ध सत्य और सुन्दर से है, यह हमें न भूलना चाहिए।

यथार्थ चित्रण द्वारा सुधार का प्रयास पाठकों के लिए असिधारा व्रत से भी कठिन पड़ता है, क्योंकि नग्न चित्रण, परिज्ञान को पीछे बढ़ाते हैं वासनाओं को पहले। एक अत्याचारी जमींदार, अर्थपिशाच पूंजीपति और निन्द्य वेश्या के प्रति घृणा स्वाभाविक है; पर एक कलाकार यदि उनके यथार्थ रूप को चित्रित करते हुये, सहानुभूति और दया की जगह क्रोध और घृणा को ही पाठकों के हृदय में भर सका तो उसने किस लोक-

कल्याण की सिद्धि की ? वे अपना और मानव समाज का भला बुरा सोचने में असमर्थ हैं; उनकी चेतना मूढ़ हो गई होती है; उनकी मूर्छित मानवता को उस समवेदना की आवश्यकता है जो उनकी आत्मा को कोमलतम और सचेतन स्पर्श से जाग्रत कर सके। वर्ग संघर्ष के समर्थक कलाकारों को भी विजय के बाद अपने आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिये भली बुरी वृत्तियों की शाश्वत उपस्थिति में ही सद्‌वृत्तियों का विकास करना होगा।

साधनात्मक साहित्य अशिव और शिव का संघर्ष प्रस्तुत कर शिव की प्रतिष्ठा करता है। यह यथार्थ है कि शिव-अशिव और सत्-असत् के संघर्ष में सर्वदा सत् पक्ष की ही विजय नहीं होती, किन्तु असत् के विशाल-अन्ध-हृदय को चीर कर टिमटिमाने वाले सत् के दीप का कोई मूल्य ही नहीं है ? सम्भव है वह अन्धकार को दूर करने के प्रयास में ही बुझ जाय, पर क्या इसी लिये उसकी साधना के ज्वलित क्षणों को ओझल कर दिया जाय ? अंधेरे मार्ग पर चलने के लिये अन्धकार की नहीं, प्रकाश की सहायता अपेक्षित है; कहानी मनोरंजन करे, पर वह सन्तोष की एक सांस भी तो दे सके जिससे नवीन उत्साह और स्फूर्ति के साथ मनुष्य जीवन संघर्ष में प्रवृत्त हो सके; उसमें अमृत की वह धारा भी तो हो जो श्रान्त-क्लान्त व्यक्ति में जीवन भरदे। यथार्थ के आवरण में ढँका आदर्श ही जीवन के समीप रह कर जीवन को जीवन-रस से सिंचित कर सकता है।

कहानी में प्रेम और करुणा:—

मानव की चिरन्तन और उदात्त भावनाओं में प्रेम और

करुणा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रेम पर प्रतिष्ठित शृंगार रसराज कहलाता है, और करुणा की महत्ता जानने के लिए तो भवभूति की 'एको रसः करुण एव' उक्ति ही पर्याप्त है। जीवन के अन्दर भी इन दोनों वृत्तियों के परिष्कृत और चरम रूप की प्रतिष्ठा से बुद्ध, भगवान बन गए और राष्ट्र पिता गांधी, महात्मा। साहित्य के क्षेत्र में भी प्रेम पर आधारित सूर की वात्सल्य भावना ने उन्हें महाकवि बना दिया। रीति कालीन परम्परा में प्रेम-सुधा को वासना के आसव में घोल दिया गया और विवेक शून्य होकर रसिकों ने उसका अधिकाधिक पान किया, इससे समाज तथा राष्ट्र और भी तीव्र गति से पतनोन्मुख हुआ।

गद्य की प्रतिष्ठा और पाश्चात्य साहित्य के पड़ने वाले प्रभाव ने हमारे साहित्य और दर्शन में भी विचार विभेद पैदा कर दिया। रीति कालीन कवियों में दो भावनाएँ दिखाई पड़ती हैं, दाम्पत्य प्रेम की और परकीया नायिका की। राष्ट्रीय भावना के उत्थान के साथ साथ रीतिकालीन परम्परा बहुत कुछ समाप्त हो गई थी, किन्तु फ्रायड के मानस-विश्लेषण के नाम पर प्रेम को भी काम जन्य मान कर काम-वासना का खुल कर प्रचार किया जाने लगा। साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा कहानियों में इसके लिए उन्मुक्त क्षेत्र मिला, करीब ८० प्रतिशत कहानियाँ प्रेम के किसी न किसी रूप को आधार बना कर निकलती हैं और उनमें से अधिकांश प्रेम के विशुद्ध रूप को उपस्थित करने की अपेक्षा, काम-वासना जागृत करने का प्रयास करती हैं। अनेक पत्र पत्रिकायें केवल प्रेम कहानियाँ प्रकाशित करती हैं और हृदय में भावुकता की तरंगें लहराने वाले किशोर और

तरुणावस्था के पाठक रुचि पूर्वक उन्हें पढ़ते हैं। समाज पर इन कहानियों के पड़ने वाले प्रभाव को, प्रेम के नाम पर होने वाली आत्महत्याओं के रूप में देखा जा सकता है।

प्रेम की प्रतिष्ठा दो प्रकार से होती है, रूप दर्शन द्वारा और साहचर्य द्वारा। रूप द्वारा प्रतिष्ठित हेतुसंलक्ष्य होता है और साहचर्यगत प्रेम गहरा और गम्भीर। प्रथम में प्रेम की गति वासना की तरंगों से उद्वेलित होती है, दूसरे में प्रेम की गति शान्त सरिता की भाँति आगे बढ़ती है। साहचर्य द्वारा उत्पन्न प्रेम में सौन्दर्य अपेक्षित नहीं है। माँ, पुत्र, भाई, बहन आदि में उत्पन्न होने वाला प्रेम साहचर्य जन्य होता है, अतः हमारा ध्यान एकबार भी नहीं जाता कि वे रूपवान हैं या कुरूप। देश-प्रेम में आत्मत्याग करने वाले पुरुषों और पुत्र को सुखी बनाने में लाखों कष्ट उठाने वाली माताओं की भावनाओं में काम-तत्व ढूंढ़ना केवल धृष्टता मात्र है। भारतीय परम्परा सर्वदा प्रेम और काम इन दोनों को भिन्न भिन्न तत्वों के रूप में देखती रही है, यही कारण है कि ईश्वर प्रेम की उत्कृष्टतम साधना में काम पर विजय आवश्यक मानी गई है।

प्रेम को आलम्बन बना कर लिखी जाने वाली अधिकांश कहानियाँ आज लोकरुचि को दूषित कर रही हैं; ओछे फिल्मों की तरह इनका उद्देश्य भी मानव की दुर्बलताओं द्वारा पैसा कमाना ही है, समाज पर पड़ने वाले प्रभाव से इन्हें कोई मतलब नहीं। प्रेम स्वयं बुरा नहीं, उसके द्वारा दया, सहानुभूति, वीरता, त्याग, बलिदान और स्फूर्ति की प्रेरणा दी जा सकती है। प्रेम के एकाँगी रूप के चित्रण की अपेक्षा उसके बहुमुखी,

विशाल तथा उदार रूप को उपस्थित करना चाहिये, जो जन मन की उदात्त वृत्तियों को प्रभावित कर सके। प्रेम विश्वजनीन है, साथ ही वह मानव जीवन की ऐसी ज्योति है जो विपत्ति के तिमिराच्छन्न प्रान्त में पथ-प्रदर्शन करती है।

करुणा एक व्यापक भावना है। आनन्द की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है जो पात्र की वृत्ति को हानि के लिये उत्तेजित करे, पर दुःख की श्रेणी में रहने वाली करुणा पात्र की भलाई के लिये प्रेरणा देती है। दूसरों के सुख को देखकर मनुष्य जितना सुखी नहीं होता, उससे अधिक दूसरों के दुःख को देखकर दुःखी होता है। अज्ञात कुल-शील व्यक्ति के दुःख को देखकर भी हम दुःखी होते हैं। दूसरों के दुःख के परिज्ञान से जो दुःख होता है उसे ही करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है। ये भाव, दुःख के कारण को दूर करने की उत्तेजना देते हैं। दुःख की निवृत्ति और वास्तविक सुख का साधन करने वाले भाव शुभ और सात्विक होते हैं। अन्तःकरण में इन्हीं सात्विक वृत्तियों के अभ्युदय की प्रेरणा करना साहित्य का उद्देश्य होता है। यदि हम किसी पुरुष को दूसरे पर करुणा करते देखते हैं तो उसके प्रति हमारे मन में श्रद्धा उत्पन्न होती है; श्रद्धा और विश्वास की यही भावना लोक कल्याण का साधन करती है। सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिये करुणा का प्रसार आवश्यक है। एक निर्बल व्यक्ति को पीड़ित देखकर जितनी अगाध करुणा की धारा हमारे हृदय में प्रवाहित होती है, उतनी सबल और गतिशील, किसी बलवान् व्यक्ति को पीड़ित देखकर नहीं। करुणा एक ऐसी उत्कृष्ट भावना है जो बहुत बड़ी त्याग-वृत्ति को जन्म देती है। कहानी

के अन्तराल में प्रवाहित होने वाली करुणा की अजस्र धारा समाज को व्यापक रूप में आप्लावित कर सकती है, क्योंकि जन सामान्य तक उसकी पहुँच है और साहित्य के अन्य अंगों की अपेक्षा उसका साम्राज्य विस्तृत है।

प्रेम की तरह ही इस करुणा की भावना का भी कहानियों में दुरुपयोग किया गया है। विधवाओं की करुण दशा के वर्णन की आड़ में कामलीला का नाटक रचा जाता है; गरीबी का लाभ उठाकर किसी गरीब की तरुण कन्या को पथभ्रष्ट करने की प्रेरणा दी जाती है; उच्चकुल और सम्पन्न व्यक्तियों को अशिक्षित और निम्न कुल तथा निर्धन व्यक्तियों की प्रतिष्ठा-हरण की ओर उन्मुख किया जाता है और दुर्भाग्य की बात है कि यह सब होता है प्रगतिवाद के नाम पर। प्रगतिवाद स्वयं आदर्श भावना है और प्रत्येक प्रगतिशील और उदात्त-वृत्तियों के पोषक साहित्यिकों का यह कर्त्तव्य है कि कहानी ही नहीं, साहित्य के अन्य अंगों में भी प्रेम और करुणा जैसी भावना के सदुपयोग पर ध्यान दें।

कहानी का विकास

भारत का प्राचीन कथा साहित्य

विश्व के उपलब्ध ग्रन्थों में वेद सबसे पुरातन है। वेद ज्ञान का वह अथाह भण्डार है, जिसमें मानव जीवन के लौकिक और पारलौकिक सुखों को देने वाले सर्व हितकारी नियमों का संग्रह है। जिस प्रकार मानव स्वभाव के अन्तर्गत गीत का गाना और सुनना आता है, उसी प्रकार कहानी का कहना और सुनना भी। पवित्र सामवेद की लय में लीन होने वाले ऋषियों ने अनेक कथानकों का समावेश अपनी ऋचाओं में किया है। वेद उस सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान और साहित्य का मूल है जो बाद में विभिन्न शाखाओं के रूप में पल्लवित और पुष्पित हुआ; अतः साहित्य की एक प्रमुख शाखा कहानी उससे अलग किस प्रकार रह सकती है? "एक ऋषि द्वारा यज्ञ में इन्द्र का आवाहन करना, उन्हें सोमरस पान कराकर वृत्र के वध के लिये तैयार करना" आदि वे छोटी छोटी, मन्त्रों में गुम्फित कथायें हैं जिनके भीतर कहानी का बीज छिपा है। शर्मा-पणि और यम-यमी आदि के संवादों में कहानी के तत्व निहित हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी अनेकों उपाख्यान उपलब्ध होते हैं। एतरेय ब्राह्मण का "हरिश्चन्द्रोपाख्यान" एक अत्यन्त ही प्रसिद्ध

और मनोहर कहानी है जिसमें एक ब्राह्मण के लड़के शुनःशेप की बलि देने की व्यवस्था और विश्वमित्र द्वारा उसको बचाने की कथा वर्णित है। यह कहानी तत्त्वपूर्ण तो है ही, अत्यन्त ही मार्मिक और करुण भी है।

उपनिषदों के तथ्य निरूपण के लिये तो कहानी आधार शिला ही बन गई है। उपनिषद्, वेदों के अंगभूत हैं। यम और नचिकेता की कथा में, नचिकेता द्वारा यम से मृत्यु के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने की कथा वर्णित है। छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णित रैक्वा गाड़ी वाले की कथा भी प्रसिद्ध है। सत्यकाम जाबालि की कहानी में तत्कालीन सरल और सत्य जीवन की झलक दिखाई पड़ती है।

"सत्यकाम विद्याध्ययन की इच्छा से हारीद्रुमात गौतम मुनि के पास जाता है। मुनि उसके पिता का नाम और गोत्र पूछते हैं। भोले सत्यकाम को न तो अपने पिता का नाम ज्ञात है, न गोत्र का ही। मुनि की आज्ञा से वह अपनी मां के पास पूछने वापस जाता है। 'मां मेरा गोत्र क्या है?' मां ने उत्तर दिया 'बेटा! मैं स्वयं तुम्हारा गोत्र नहीं जानती। जब मैं घरेलू नौकरानी के रूप में इधर उधर भटकती फिरती थी, उन्हीं दिनों मैंने तुम्हें गर्भ में धारण किया था। पर मेरा नाम जाबाला और तुम्हारा सत्यकाम है। तुम जाबाला के पुत्र सत्यकाम हो।' सत्यकाम ने सम्पूर्ण विवरण मुनि के सामने इसी प्रकार प्रस्तुत कर दिया। सत्यकाम की इस सच्चाई पर मुग्ध होकर गुरु ने उसे अमर ज्ञान दिया।"

ज्ञान की पिपासा से आकुल श्वेत केतु की कहानी भी कम आकर्षक नहीं है। उपनिषद् काल की ये कहानियां उसके भी

के जीवन, रहन-सहन, आचार-विचार पर प्रचुर प्रकाश डालती हैं। उस समय ज्ञान-विज्ञान के मुख्य केन्द्र वे आश्रम थे, जो शहरों और गाँवों से दूर प्रकृति के रमणीय और आकर्षक स्थलों पर होते थे; इसलिये तत्सम्बन्धी कहानियों के पात्र भी ऋषि और ब्रह्मचारी तथा राजा और पुरोहित ही हैं। कला और व्यवसाय में लगे हुये ग्रामीण, निम्न श्रेणी के पात्रों का प्रायः अभाव है। उपनिषदों का विषय ही आत्मा और परमात्मा के गूढ़ रहस्यों से परिचित होकर परम शान्ति या मोक्ष की उपलब्धि कराना है; इसलिये जिज्ञासा और प्रश्नों से ही इनका प्रारम्भ होता है। कथानक को गति भी, गहन तत्वों की आलोचना के साथ साथ ही प्राप्त होती है।

उपनिषद् साहित्य नहीं है इसलिये वे साहित्य की शैली में लिखे भी नहीं गये। मैथ्यू आर्नल्ड के शब्दों में वे "जीवन की आलोचना भी नहीं है।" वास्तव में ये अन्तिम तथ्य या सच्चाई की जाँच पड़ताल कहे जा सकते हैं। दार्शनिक तथ्यों के स्पष्टीकरण होने के कारण इन्हें, कहानी कला की कसौटी पर कसना भूल होगी, परन्तु फिर भी इनमें कहानी के कई अनिवार्य गुण और अनपेक्षित दोष विद्यमान हैं। इनमें जगह जगह प्रेरणा का अंश, भावुकता का समावेश और भाषा का प्रवाह भी है। संवादशैली की प्रधानता और प्रश्नोत्तरों का जोर है। अरुचिकर और नीरस स्थलों की भी इनमें कमी नहीं है। ऋषियों ने गहन विचारों की अभिव्यक्ति के लिये ही इन कहानियों को अपनाया है। इन विचारों को स्पष्ट करने के लिये ही आगे चलकर पशु-पक्षी, देव-दानव, पेड़-पौधे, नदी-सरोवर आदि

प्रकृति के उपकरणों को भी पात्र बनाने में संकोच नहीं किया गया।

उत्तम और सर्वाङ्ग सुन्दर महाकाव्य का भव्य प्रासाद खड़ा करने के लिये कथानक की नींव आवश्यक है। अनेकों प्रासंगिक कथाओं की समवेत धारा से ही मुख्य कथानक को तीव्र गति मिलती है। आदि कवि वाल्मीकि की करुण भाव-धारा को, स्वतः स्फुटित श्लोक द्वारा शैली भले ही प्राप्त हो गई हो, पर उनके सदृश ही उन्मुक्त, उनकी कल्पना ने भी आकाश में विचरण करते समय उस कथानक को अवश्य देख लिया, जिस पर उसने अपना नीड़ बनाया। रामायण में मुख्य कथा के अतिरिक्त अनेकों छोटी छोटी प्रासंगिक कथायें दी गई है। कहीं तो वे मुख्य कथा के पात्रों से सम्बन्ध रखती है और कहीं केवल उनकी जिज्ञासा की तृप्ति मात्र के लिये वे ही वर्णित हैं। सरयू नदी के उद्भव की कथा एक मात्र जिज्ञासा की शान्ति के लिये ही दी गई है। जीवन को समग्र रूप मे देखने की प्रथा वैदिक और उपनिषद् काल से ही चली आ रही थी, इसलिये कथानकों में जीवन के पूर्ण और बहुविध चित्रण को ही पहिले प्रश्रय मिला। दन्त कथाओं में प्रचलित शायद ही ऐसी कोई कहानी हो, जो जीवन के प्रारम्भ से लेकर एक सुखद अन्त तक न वर्णित हो। भारतीय आदर्श और परम्परा की इस देन को ठीक ढंग से हृदयंगम न कर सकने के कारण ही बड़ी और छोटी कहानियों के सम्बन्ध-निर्धारण में भूल की जाती है और कहानी कला को सर्वथा पाश्चात्य देन समझी जाती है।

महाभारत को हम प्राचीन जातीय महाकाव्य और कथानकों का एक बृहत् खजाना कह सकते है। आगे आने वाले

संस्कृत-साहित्य की परम्परा में रामायण और महाभारत की कथाओं का वहुत अधिक उपयोग किया गया है। दोनों ही महाकाव्य, नाट्य साहित्य को कथावस्तु (I lot) देते रहे हैं। अन्य पुराण भी अनेकों कहानियों से भरे हुये हैं। श्रीमद् भागवत का दशम स्कन्ध तो कृष्ण भक्त कवियों का निरन्तर प्रेरणा स्रोत बना रहा। रामायण और महाभारत दोनों ही काव्यों के पात्र राजवंशों से सम्बन्ध रखने वाले हैं। इनके चरित्र चित्रण में भी कौशल का परिचय दिया गया है। उपनिषद् काल में ग्राह्य पात्रों, ऋषि-मुनियों का भी इनमें अभाव नहीं है। स्त्री पात्रों में एक असाधारण व्यक्तित्व पाया जाता है। मानव दुर्वलताओं से मुक्त होने पर भी ये पात्र जन सामान्य से ऊंचे हैं। ये दोनों काव्य, तत्कालीन व्यवस्था, रहन सहन और सभ्यता के पूर्ण प्रतीक हैं।

रामायण की अपेक्षा महाभारत में आख्यानों की संख्या अधिक है। वन पर्व में अनेकों प्रासंगिक कथायें दी गई हैं, जिनमें राम, नल-दमयन्ती, सावित्री-सत्यवान, शकुन्तला, गंगावतरण, जलप्लावन आदि मुख्य हैं। महाभारत को इतिहास, पुराण या आख्यान भी कहा जाता है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों के साथ काल्पनिक तत्वों का पूर्ण मिश्रण किया गया है। इस तत्व की अधिकता के कारण ही वे काल्पनिक कथायें मालूम होती हैं। अन्य पुराण, आख्यानों, प्राचीन गाथाओं और कल्प-वाक्यों को लेकर लिखे गये हैं। पुराण के पांच लक्षण कहे गये हैं:—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम्॥"

इस प्रकार इन पुराणों में ऐतिहासिक और वैज्ञानिक,—इन दोनों प्रकार की ही कथाओं का समावेश हो गया है। विभिन्न अवतारों, सूर्य-चन्द्र वंशी राजाओं की गाथाओं, व्रतों, पर्वों आदि के वर्णन से ये पुराण विभिन्न प्रकार की कथाओं के मिश्रण बन गये हैं। इन कथानकों का वर्गीकरण उक्त पंच लक्षणों में ही किया जा चुका है।

इन कथानकों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) सम्पूर्ण कथानक छन्दों में लिखे गये हैं।

(२) कल्पना और ऐतिहासिक तथ्यों का अद्भुत मिश्रण किया गया है।

(३) कहानी के पात्र अभिजात वर्ग के और ऋषि-मुनि लोग ही अधिक हैं।

(४) चरित्र का विकास सुन्दर हुआ है और प्रासङ्गिक कथाओं का उपयोग चरित्र को निखारने के लिए ही किया गया है।

वैदिक और उपनिषद् काल की कहानियों में तथ्य-विश्लेषण और निष्कर्ष की ओर अधिक ध्यान दिया गया, किन्तु पौराणिक काल में वृत्त-वर्णन की ही प्रधानता रही। इस युग में प्रासङ्गिक कथाओं का भी स्वच्छन्द रूप में प्रयोग किया गया जब कि वैदिक काल में इसका प्रायः अभाव दिखाई पड़ता है। ये प्रासङ्गिक कथायें स्वयं छोटी छोटी कहानियां हैं। इनमें, मानव की शुभाशुभ प्रवृत्तियों का संघर्ष दिखला कर शुभ प्रवृत्तियों की विजय दिखलाई गई है। इस प्रकार आने वाले साहित्य के लिये, एक निश्चित उद्देश्य की ओर इङ्गित करना, और श्रेय को

श्रेय की अपेक्षा महत्त्व देने आदि की परम्परा की नींव इन पुराणों की ही डाली हुई है। कहानी के लिये संघर्ष का प्रदर्शन, चरित्र की स्पष्टता और श्रेय की स्थापना इस पौराणिक युग की ही देन है। साहित्य की अन्य धाराओं में भी इनका उपयोग किया गया। आदर्शवादी विचार-धारा की ओर उन्मुख करके श्रेय की सिद्धि के मार्ग पर भारतीयों के बढ़ाने का कार्य बहुत कुछ पुराणों ने ही किया है। दर्शन और सूत्र ग्रन्थों की रचना के युग में कहानी का यह पौराणिक रूप स्थिर न रहा।

बौद्ध धर्म के जातक ग्रन्थों में कथाओं और कहानियों का संग्रह किया गया है। ये जातक अपने ढंग के अनूठे हैं और इनमें पूर्ण बुद्ध बनने से पहले, बुद्ध के जन्म जन्मान्तरों की कथायें वर्णित हैं। इन ग्रन्थों की रचना पाली में की गई है। बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ साथ उन कथाओं का पूर्वी एशिया में तो प्रचार हुआ ही, पश्चिमी देशों के सम्पर्क से ईरान, मिश्र, यूनान आदि देशों में भी इनका प्रसार हुआ। इन कथाओं में पात्रों का चरित्र सुन्दर तथा सरस रूप में अंकित किया गया है। तथ्यों के स्पष्टीकरण में भी ये कथायें सहायक बनी हैं। यूरोपीय विद्वान ईसा से ५५० वर्ष पूर्व के आस पास होने वाले यूनान देश के ईसप की कहानियों से ही कहानी का प्रारम्भ मानते हैं; परन्तु जातक ग्रन्थों की रचना ईसप के पूर्व ही हो चुकी थी और यूनान देश से भारत के सम्पर्क के कारण ईसप की कहानियों पर भी जातक कथाओं की स्पष्ट छाप मिलती है।

बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव से, जीव जन्तुओं को भी कहानियों का पात्र बनाकर उपदेश दिया गया। अपने मन्तव्यों के प्रचार के

लिये बौद्धों और जैनों, दोनों ने ही कहानियों को अभ्रान्त साधन बना लिया था। पुनर्जन्म के सिद्धान्तानुसार आत्मा की स्थिति तिर्यग्योनियों में भी सिद्ध हो जाती है; सम्भवतः इसी लिए कथाओं में पशु पक्षियों को अधिक स्थान मिला। इस प्रकार की कथाएँ ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दी के आसपास बहुत ही लोकप्रिय थीं। पञ्चतन्त्र और हितोपदेश जैसे कथा-संग्रह ग्रन्थ इन्हीं जातक कथाओं के आधार पर लिखे गये। इनके पात्रों में पशु पक्षी अधिक हैं।

ईसा की प्रथम या द्वितीय सदी में लिखा गया "अवदान शतक" बौद्ध साहित्य के कथा ग्रन्थों में बहुत ही प्रसिद्ध है। यह गद्य और पद्य दोनों में लिखा गया हैं। इसमें कुछ ऐतिहासिक उपाख्यान भी हैं। उदाहरण के लिए "श्रीमती" की कहानी ली जा सकती है:—

"श्रीमती" बिम्बसार की रानी थी। अजातशत्रु ने यह घोषणा करवा दी थी कि राज्य का कोई भी व्यक्ति बुद्धावशेषों को श्रद्धांजलि नहीं भेंट कर सकता। इस आज्ञा को जानते हुये भी संध्या के समय आरती का थाल सजाए वह एक अवशेष की समाधि के पास पहुँची, जहां अजातशत्रु के सैनिकों ने उसका वध कर दिया।"

"दिव्यावदान" भी इसी प्रकार के आख्यानों का एक संग्रह है। इसमें अशोक के पुत्र कुणाल की वह लोक प्रसिद्ध और करुण कथा भी दी गई है, जिसमें उसकी विमाता द्वारा आंखें निकलवा देने का वर्णन है। वैसे तो उक्त सम्पूर्ण बौद्ध कथाओं का उद्देश्य शिक्षा देना ही है किन्तु "आर्यशूर" कृत "जातक

माला" बौद्ध धर्म के स्वीकृत सिद्धान्तों के प्रचार के लिए लिखी गई मालूम होती है। इसकी कहानियां गद्य-पद्यमय मिश्रित शैली में लिखी गई हैं। प्रत्येक कहानी का आरम्भ सरल गद्य खण्ड से होता है। इन कथाओं का उद्देश्य आचारमूलक शिक्षा देना है। इन का चीनी भाषा में अनुवाद भी हुआ था। इसका समय ४३४ ई० के करीब है।

बौद्ध साहित्य की इन कथाओं की विवेचना करने पर निम्नलिखित तीन तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं :—

(१) शैली में गद्य तथा पद्य दोनों का समावेश हो गया था।

(२) कहानियों का आकार इतना छोटा हो गया था कि उन छोटी छोटी कहानियों को पाँच मिनट से भी कम समय में समाप्त किया जा सकता है।

(३) आजकल के विशिष्ट राजनीतिक विचारों के प्रचार की भांति ये कहानियां भी धार्मिक प्रचार के लिये लिखी गई थीं। इनका उद्देश्य सदाचार और नीति की शिक्षा देना था।

इसके अतिरिक्त बौद्ध कथा साहित्य की सबसे बड़ी देन कथानक में सामान्य पात्रों, यहां तक कि पशु-पक्षियों तक का सम्मिलित करना है। एक विशिष्ट वर्ग से ही कथानक के लिए पात्र ग्रहण करने की परम्परा समाप्त होगई और जीवन के व्यापक क्षेत्रों की ओर कथानक का प्रवाह मुड़ गया।

संस्कृत के लोक प्रिय कथाग्रन्थः —

संस्कृत के विशुद्ध लोक प्रिय कथा-ग्रन्थों में सब से प्राचीन गुणाढ्य कृत "वृहत् कथा" है। यह ग्रन्थ पैशाची प्राकृत

में लिखा गया था, किन्तु अब अनुपलब्ध है। इसके आधार पर लिखे गये तीन कथा ग्रन्थ उपलब्ध हैं। क्षेमेन्द्र की "वृहत् कथा मजरी" सोमदेव का "कथासरित्सागर" और बुद्ध स्वामी का "वृहत्कथाश्लोकसंग्रह।" बृहत्कथा का नायक नरवाहनदत्त है। वह वेगवती और गोमुख को साथ लेकर यात्रा करता है तथा बीच में ही वह वेगवती से अलग हो जाता है। इस कथा की नायिका मदनमंजुका है। गोमुख की सहायता से नरवाहनदत्त अनेक साहसिक कार्य करता है और मदनमंजुका को प्राप्त करके विद्याधरों के देश का राजा बनता है। मानस वेग के अधिकार में पड़कर भी मदनमंजुका अपने सतीत्व की रक्षा करती है। इसमें नरवाहनदत्त और गोमुख के पराक्रम का सजीव वर्णन किया गया है। कथा मौलिक और सामान्य श्रेणी के व्यक्तियों को प्रिय लगने वाली है। गुणाढ्य ने पात्रों का बड़ा ही भव्य चरित्र अंकित किया है। नरवाहनदत्त वीर और न्यायी तथा गोमुख, नीतिज्ञ, कुशल और चतुर है। नायिका को भी एक आदर्श नारी के रूप में सामने लाया गया है। बृहत् कथा की रचना का समय ईसा की छठी शताब्दी से पूर्व ही है। यह ग्रन्थ लोकप्रिय कथा ग्रन्थों में प्राचीनतम तो है ही, अनेकों दन्त कथाओं के सृजन का भी यह कारण बना। उस समय सम्भवतः लोग इसकी कथाओं को उसी चाव से सुनते होंगे, जिस चाव से आज बच्चे राजा रानियों की कथायें सुना करते हैं।

बुद्ध स्वामी का "वृहत् कथा श्लोक" संग्रह ईसा की आठवीं शताब्दी के आस पास का ग्रन्थ है। इसमें पंचतन्त्र और वैताल पंचविंशतिका की कथायें भी समाविष्ट है। हां,

इनमें अन्तर अवश्य मिलता है। इस श्लोक संग्रह की भाषा अत्यन्त ही सरल और सर्वजनग्राह्य है। क्षेमेन्द्र की 'बृहत् कथा-मंजरी' ई० १०६३ के आसपास लिखी गई है। यह गुणाढ्य की बृहत् कथा की संक्षेप मालूम होती है। इसमें बृहत् कथा की उत्पत्ति का भी वर्णन है। नरवाहनदत्त के पिता उदयन की भी कुछ कथा इसमें दी गई है। इसमें प्रासंगिक कथाओं की इतनी भरमार है कि मुख्य कथा उसी में उलझ गई है। ई० १०८१ के पास लिखी गई सोमदेव की कृति *"कथा सरित सागर"* से यह मिलती जुलती है। "सरित् सागर" की कहानियां बड़ी ही रोचक और रमणीय हैं। यह एक विशाल ग्रन्थ है तथा अठारह खण्डों में विभक्त है। इसकी सम्पूर्ण कहानियों में सजीवता और नूतनता है। कथाओं के पात्रों में नीति कुशल, चतुर, मूर्ख, धूर्त, शठ सभी प्रकार के मनुष्य हैं। प्रेम प्रपञ्च संबंधी भी कुछ कहानियाँ हैं, परन्तु उनका उद्देश्य चारित्र्य निर्माण ही है। समुद्र और स्थल संबंधी यात्रा की अद्भुत घटनाओं का वर्णन भी है। कथासरितसागर एक समुद्र की भाँति है जिसमें अनेकों आख्यान रुपी नदियाँ समाविष्ट होती हैं।

वैतालपंचविंशतिका में पच्चीस कहानियां हैं। इन कथाओं का वक्ता शव में बसा हुआ एक वैताल तथा श्रोता राजा त्रिविक्रमसेन (विक्रमादित्य) हैं। इसके कई संस्करण हैं, जिनमें से एक बारहवीं शताब्दी के बाद की लिखी गई गद्यमयरचना, शिवदास की मानी जाती है। इसकी कहानियां सामान्य जनता में बहुत अधिक प्रचलित है। इसमें दिया गया कथानक अत्यन्त ही सरल है :—

"एक महात्मा ने राजा का कुछ उपकार किया और उन्होंने राजा को आदेश दिया, कि जाओ और कुछ दूरी पर पेड़ से लटकती हुई लाश ले आओ। राजा जब उस लाश को उतार कर ले चला तो उसमें निवास करने वाले वैताल ने राजा से प्रतिज्ञा करा ली कि वह मार्ग में चुप रहेगा। राजा ने इसे स्वीकार कर लिया। मार्ग में वेताल ने राजा को एक कहानी सुनाई और एक उलझी हुई समस्या उनके सामने रख दी। राजा ने अपने बुद्धि बल से शीघ्र ही उसका उत्तर दे दिया। राजा के बोलते ही लाश पुनः पेड़ पर जा कर लटक गई। इस प्रकार चौबीस बार राजा ने उत्तर दिया और हर बार उसे पेड़ से लाश उतार कर लानी पड़ी। पच्चीसवीं बार उत्तर के लिए राजा सोचने लगा। तब वैताल ने स्वतः उस पाखंडी महात्मा का भंडा फोड़ किया और राजा को बच निकलने की सलाह दी।"

संस्कृत में भी यह ग्रन्थ अत्यन्त ही सरल भाषा में लिखा गया है और इसकी लोक प्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि भारत की प्रायः सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है।

शुकसप्तति :— में एक तोता और उसकी स्त्री मैना की सत्तर कथाएँ संगृहीत हैं। बाण के कादम्बरी की तरह इसका वक्ता भी एक पक्षी है। इसमें असती स्त्रियों की चालाकियों का ही वर्णन अधिक आया है, किन्तु उनका उद्देश्य कर्त्तव्य और धर्म पथ से च्युत होने वाली स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण कर कुमार्ग पर जाने वाली स्त्रियों को बचाना ही है।

"एक वणिक् मदनसेन परदेश जाता है और अपनी पत्नी को घर पर एक तोते की देख रेख में छोड़ जाता है। तोता

वास्तव में एक गन्धर्व था। मदनसेन की स्त्री पतिव्रत धर्म से च्युत होना चाहती है; उसे बचाने के लिए ही तोता प्रति रात्रि एक एक कथा सुनाता है जब तक कि सत्तरवें दिन मदनसेन परदेश से लौट नहीं आता।" कहानी के अन्त में तोता इस प्रकार अन्य कथा से उसका संवन्ध जोड़ देता था कि सत्तर दिन तक लगातार वह उत्सुकता पूर्वक उसे सुनती रही। इस प्रकार तोता उसे धर्म च्युत होने से वचा लेता है। यह सरल संस्कृत गद्य में लिखा हुआ है और वीच वीच में कुछ पद्य प्राकृत में भी हैं। गावों में प्रचलित पुरातन दन्त कथाओं की शैली ठीक इसी प्रकार की होती है जिनमें कथानक की गति के साथ साथ भाव पूर्ण उपदेशात्मक गीत भी सम्मिलित होते हैं। यह भी ग्यारहवीं सदी का लिखा हुआ ग्रन्थ है। इसका भी अनुवाद हो चुका है।

सिंहासनद्वात्रिंशिका में विक्रमादित्य के सिंहासन में लगी वत्तीस पुतलियों द्वारा भोज को सुनाई गई कहानियाँ वर्णित हैं। यह सिंहासन विक्रमादित्य ने इन्द्र से प्राप्त किया था। उसकी मृत्यु के अनन्तर यह जमीन में गाड़ दिया गया था, जिसे धारा नरेश भोज ने पुनः प्राप्त किया। जव भोज इस पर वैठने लगा तो पुतलियों में से प्रत्येक ने विक्रमादित्य के न्यायशील और उत्तम चरित्र का वर्णन करते हुए एक एक कहानी सुनाई, और कहा कि इन गुणों से सम्पन्न राजा ही इस सिंहासन पर वैठने का अधिकारी है। इसकी कथाओं का भी हिन्दी में अनुवाद हो चुका है। ये अन्तिम तीन कथा-ग्रन्थ जहां संस्कृत और प्राकृत साहित्य के अन्तिम कालीन कथा साहित्य की धारा की दिशा सूचित करते हैं वहां अपने

अनुवादों द्वारा हिन्दी कथा साहित्य की नींव भी डालते हैं।

नीति संबन्धी कहानियों में पंचतन्त्र और हितोपदेश का बहुत अधिक सम्मान है। पंचतन्त्र में पांच अध्याय हैं:-(१) मित्रभेद (२) मित्रसंप्राप्ति (३) काकोलूकीय (४) लब्ध प्रणाश और ५वें अध्याय में वे कहानियाँ है, जिन के पात्र विना सोचे समझे कार्य करते हैं। पंचतन्त्र की तुलना पूर्व कथित कथा ग्रन्थों से नहीं की जा सकती, क्योंकि वृहत्कथा आदि का प्रयोजन पाठकों का विशुद्ध मनोरंजन है जबकि इसका उद्देश्य धर्म और राजनीति की शिक्षा देना है। इन कहानियों का उद्देश्य नीति का स्पष्टी करण है। इसके पात्र अधिकतर पशु पक्षी हैं और वे सभी मानवीय संवेदनाओं से युक्त हैं। काकोलूकीय तन्त्र में ता वे, राजनीतिक दाव पेंच भी करते हैं और भेदनीति द्वारा अपर पक्ष का संहार करते हैं। पंचतन्त्र की शैली मनोहर और भाषा सरल है। प्रत्येक कहानी का आरम्भ एक श्लोक से होता है; वह श्लोक पूर्व कथा के अन्त में कहा जाता है; तथा उसमें ही आगे आने वाली कथा के मुख्य पात्रों का नाम आ जाता है। शुक सप्तति की कथायें इसी शैली पर लिखी गई हैं।

हितोपदेश को पंचतन्त्र का विकृत रूप कहा जा सकता है। इसकी कथायें भी प्राय उसी प्रकार की हैं। पंचतन्त्र आदि का अरबी फारसी में अनुवाद भी हुआ। वृहत्कथा की रचना शैली के अनुकरण पर ही वहाँ "सहस्र रजनी चरित्र" आदि ग्रन्थ बने।

संस्कृत साहित्य में कुछ अन्य कथायें भी लिखी गईं।

बाण की "कादम्बरी" सुबन्धु की 'वासवदत्ता' और दण्डी का "दश कुमार चरित" इन में मुख्य हैं। पर ये कहानी की अपेक्षा गद्यकाव्य अधिक हैं। दण्डी ने "गद्य काव्य को ही कथा" कहा है, किन्तु निश्चय ही गद्य काव्य और सर्वसाधारण की कहानी में अन्तर है। कथा साहित्य के भीतर उपन्यास और कहानियां, दोनो को ही समाविष्ट किया जाता है। यदि इन्हें कथा साहित्य के भीतर रखना ही हो तो इन्हें उन उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है जिन में कल्पना और भावुकता के साथ पद लालित्य भी झलक उठता हो। दशकुमार चरित में यात्रा, साहस, आश्चर्यमय किया कलाप और कूट चातुरी की प्रमुखता है जादू टोना और जन्तर मन्तर की भी कमी इन ग्रन्थों में नहीं है।

बाण का "हर्ष चरित" एक आख्यायिका ग्रन्थ है। इसमें इतिहास और कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण है। इसकी शैली पर कादम्बरी की स्पष्ट छाप है, क्योंकि श्लिष्ट और समस्त पदा-वली के कारण सुदृढ़ कथावस्तु की अपेक्षा इसमें भी भाषा का चमत्कार ही अधिक दिखाई पड़ता है। ये ग्रन्थ केवल कथा साहित्य की परम्परा को शास्वत रखने वाले सूत्र हैं।

एक दृष्टि में:—

यहां संस्कृत और प्राकृत साहित्य के विशाल भण्डार से कुछ रत्नों को चुन कर ही उनकी चर्चा की गई है; वस्तुतः वैदिक काल से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त तक के जिन कतिपय कथा ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है वे अपने युग की प्रसिद्ध और लोकप्रिय रचना होने के साथ साथ उपलब्ध भी हैं।

है उसी प्रकार कहानियों का भी वर्गीकरण, और शैली, आकार तथा वर्ण्य विषय के आधार पर उनका नामकरण भी हो चुका था। सोमदत्त की उत्पत्ति कथा में दण्डी ने लिखा है:—

"ततः सकल लिपिज्ञानं सकल देशीय भाषा पांडित्यं षडङ्ग सहित वेद समुदाय कोविदत्वं, काव्य नाटकाख्यानका-ख्यायिकेतिहास चित्रकथा नैपुण्यं......" इस आधार पर कथा साहित्य की चार परम्पराओं का स्पष्टतः परिचय मिल जाता है। (१) आख्यानक सम्भवतः बड़ी कथाओं को कहते थे। उपन्यासों के बीज इनमें उपलब्ध हो जायेंगे। (२) आख्यायिका वे छोटी छोटी कहानियाँ हैं जो केवल मनोरंजन के लिये लिखी गई थीं। (३) ऐतिहासिक कथाओं का आधार इतिहास प्रसिद्ध घटनायें थीं और (४) चित्र कथा में साहसिक कहानियों की गणना की जाती रही है। कुछ विद्वान कहानी और उपन्यास को एक ही मूल की दो शाखायें समझते हैं, पर इन दोनों शाखाओं की दिशा संस्कृत काल में ही भिन्न २ हो गई थी। उक्त सभी प्रकार की कथाओं में लेखक का व्यक्तित्व नेपथ्य में छिपा रहता था। जीवन पर लेखक के विचार क्या हैं, यह उसकी रचनाओं द्वारा ही समझने का प्रयास करना पड़ता है।

मध्य युग में—

ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम काल से ही भारतयी जीवन की धारा एक विशिष्ट दिशा की ओर मुड़ गई। विदेशी आक्रमणों से रक्षा की समस्या प्रधान बन गई और संगठन के अभाव में प्रत्येक राजा सुरक्षा के साधनों को ही एकत्र करने में व्यस्त हो गया। जीवन की कठोर वास्तविकता की चट्टानों से

टकराकर अध्यात्मचिन्तन का जहाज टूट गया। लम्बी उड़ान भरने वाली कल्पना के पंख कट गये और साहित्य-रस का माधुर्य फीका लगने लगा। इस उथल-पुथल के युग में जन-भावना भी निश्चिन्त न रह सकी। कहानियों द्वारा मनोरंजन के लिये न तो जनता के पास अवकाश ही था, न राज्य में उपयुक्त शान्तिपूर्ण वातावरण। इस राजनीतिक स्थिति के परिवर्तन के साथ ही साथ भाषा में भी महान् परिवर्तन हो गया। राज्याश्रय प्राप्त कवियों ने अपनी रचनाएँ अधिकतर संस्कृत में ही कीं। संस्कृत जन-भाषा के रूप में बहुत पहले समाप्त हो चुकी थी; यहाँ तक कि प्राकृत और अपभ्रंश के रूप में जन-भाषा का वो युग परिवर्तित हो चुका था, फिर भी अपनी परम्परा को सुरक्षित रखने एवं हिन्दुत्व के अभिमान तथा संस्कृत के प्रति अगाध श्रद्धा के कारण संस्कृत के कवियों और विद्वानों को राजा लोग आश्रय देते रहे। लोक-भाषा के कवियों को उनकी अपेक्षा अत्यन्त ही कम सम्मान मिला। किन्तु जब राजाओं की स्थिति स्वयं विषम हो गई तो काव्य-शास्त्र का विनोद समाप्त हो गया और आश्रय तथा सहायता के अभाव में संस्कृत-भाषा साहित्य के सिंहासन से सर्वदा के लिये हट गई।

देश की कोई भी भाषा इतनी सम्पन्न, व्यापक, समृद्ध और प्रचलित न थी कि संस्कृत का उत्तराधिकार सम्भाल सकती। फलतः विभिन्न प्रान्तीय भाषाएँ ही अपने अपने क्षेत्र में व्यवहृत होने लगीं। कोई भी भाषा संस्कृत की विकसित सम्पूर्ण साहित्य परम्परा और धारा को आगे न बढ़ा सकी; काव्य, नाटक, आख्यानक, आख्यायिका आदि सभी धाराएँ एक

साथ ही साहित्य क्षेत्र में न आ सकीं। भारतीय इतिहास के स्वातन्त्र्य युग की समाप्ति के साथ कला और साहित्य का भी एक युग समाप्त हो गया। मुसलमानों के आक्रमण के समय अनेकों पुस्तकालय भी जला दिये गये थे ; कला और संस्कृति के महान् चिन्हों को भी मिटाने का प्रयास किया गया, इसलिये वे अधिकांश रचनाएं, जो मध्ययुग के साहित्य पर पूर्ण प्रकाश डालतीं, समाप्त हो गईं। संस्कृत और प्राकृत के बाद उपलब्ध होने वाले लोक-साहित्य में अपभ्रंश की बहुत ही थोड़ी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं; जिनसे इतिहास के सूत्र को जोड़ने का कार्य लिया जाता है। राजस्थानी, ब्रज, अवधी और पूर्वी-हिन्दी आदि बोलियाँ एक साथ ही साहित्यिक क्षेत्र में दिखाई पड़ती हैं, किन्तु सब का आरम्भ नये ढङ्ग से हुआ है, किसी ने भी संस्कृत की परम्परा को आगे बढ़ाने का प्रयास नहीं किया। विश्व की प्राय: सभी साहित्यिक भाषाओं में पद्यबद्ध रचनाएँ प्रथम और गद्यमय रचनाएँ बाद में आईं। इन भाषाओं ने भी कविता और काव्य रचना द्वारा ही साहित्य में प्रवेश किया। हिन्दी साहित्य की सम्पूर्ण वीर-गाथा-कालीन रचनाएँ एक विशिष्ट प्रवृत्ति की द्योतक हैं। भक्ति काल की भी प्राय: सभी रचनाएँ भक्ति की विभिन्न पद्धतियों का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। इन दोनों ही युगों को काव्य-युग कहा जा सकता है। इनमें गद्य सम्बन्धी साहित्यिक रचनाओं का सर्वथा अभाव है। पत्रों, परवानों और व्यक्तिगत लेखों में ही गद्य का प्रयोग किया गया है। गद्य में लिखे जाने वाले नाटक, उपन्यास, कहानियों आदि के अभाव के प्रमुख कारणों में से गद्य की प्रतिष्ठा का न होना भी एक कारण है।

गद्य कवियों की कसौटी है। संस्कृत साहित्य में भी गद्य की कमी है, इसका मुख्य कारण यही रहा है कि सम्पूर्ण रचनाएँ केवल कण्ठाग्र करके ही सुरक्षित रखी जा सकती थीं; लिखने और छपने की कोई सुविधा तो थी नहीं। हिन्दी साहित्य भी अपने प्रारम्भिक युग से पद्यमय ही रहा, जब तक कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि के प्रयास से और द्विवेदी जी के पथ-निर्देश से गद्य बहुत आगे न बढ़ गया। राजस्थानी भाषा में लिखित हिन्दी का प्रारम्भिक साहित्य इसीलिये अधिकतर पद्यमय रहा, क्योंकि चारण इन्हें गाकर ही सुनाया करते थे। जहाँ इन कथाओं के नायक पृथ्वीराज और आल्हा-ऊदल जैसे वीर थे, वहाँ भोज जैसे दानी तथा भर्तृहरि जैसे वैरागी भी थे।

तेरहवीं शताब्दी तक मुसलमान भारतीय जीवन में घुलने मिलने लग गये थे। अरब और फारस से वे नई सभ्यता और संस्कृति लेकर आये। डेढ़ हजार वर्ष से पूर्व ही ईरान के शाह खुसरो नौशेरवां ने भारतीय जातक कथाओं का अनुवाद कराया था। पंचतंत्र आदि की कहानियां तो तुर्की आदि भाषाओं में भी अनूदित हो चुकी थीं, तुर्की में उसका नाम 'तूती नामा' है। अतः कथा परम्परा का आदान-प्रदान तो सम्भवतः तेरहवीं शताब्दी के बहुत पूर्व आरम्भ हो चुका था परन्तु भारत आनेवाले अरब और ईरानी अपनी निजी विशेषताओं से युक्त कहानियां भी साथ लाये। "सहस्र रजनी चरित्र" (Arabian Nights) तथा सूफी प्रेम गाथायें इनके उदाहरण हैं। सामान्य जनता में इनका मौखिक लेन-देन हुआ होगा और कथा साहित्य का वह मिला जुला रूप प्रस्तुत हुआ होगा जैसे कि "रानी केतकी की कहानी" में दिखाई पड़ता है।

भारतीय कथाओं पर सूफियों की विशुद्ध प्रेम कहानियों का भी प्रभाव पड़ा होगा जिन में आध्यात्मिकता की ध्वनि गूंजती है और शीरी-फरहाद, लैला-मजनू जैसी लौकिक प्रेम कहानियों का भी।

अकबर और बीरबल के सम्बन्ध में प्रचलित हास्य विनोदमयी कहानियाँ कथा साहित्य के दूसरे रूप पर प्रकाश डालती हैं। भूत-प्रेत, परियों, हूरों आदि की कहानियों में अतिरंजित वस्तुओं और घटनाओं का भी पर्याप्त प्रयोग हुआ। कहानियों के विकास पर ये प्रकाश मात्र डालती हैं क्योंकि इनका लिखित रूप कम ही उपलब्ध होता है।

वृजभाषा में:—

हिन्दी साहित्य के द्वितीय युग में व्रजभाषा का प्रयोग हो रहा था किन्तु व्रजभाषा-गद्य का कोई भी परिमर्जित रूप उपलब्ध नहीं होता। इस काल में ऐसी आख्यायिकायें लिखी भी नहीं गई, जो संस्कृत की कहानी परम्परा को आधुनिक युग के साथ सम्बद्ध कर सकतीं। संवत १६२१ में लिखी गई श्री गोकुल-नाथ जी की 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता" कदाचित् हिन्दी की पहली गद्यमय कहानी है। "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' भी उन्हीं की लिखी कही जाती है। इन में वैष्णव भक्तों और आचार्यों की कथायें बोल चाल की व्रजभाषा में लिखी गई हैं। यद्यपि इनमें साहित्यिक निपुणता या चमत्कार नहीं है, पर वैष्णव सन्तों के चमत्कारों का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन अवश्य किया गया है। इन कथाओं का उद्देश्य अपने सम्प्रदाय के आचार्यों की महिमा का वर्णन और जन सामान्य पर उनकी धाक

विठाना है। सं० १७६० के आसपास का लिखा हुआ 'नासि-केतोपाख्यान' भी मिला है जिसकी भाषा व्यवस्थित ब्रज है पर इसकी शैली अनुवाद की भांति है और इसके लेखक का पता नहीं है। संवत् १७६७ में सूरति मिश्र ने "वैताल पञ्च विंशतिका" की कहानियाँ लेकर "वैताल पचीसी" ब्रजभाषा में लिखी। इन कथाओं का स्वरूप और शैली संस्कृत का ही आधार लिये हुये है।

इस प्रकार ब्रजभाषा में दो तरह की कहानियाँ उपलब्ध होती हैं, एक तो वे जो संस्कृत से अनुवादित हैं और दूसरी वे, जो संक्षिप्त जीवन वृत्त से मिलती-जुलती हैं। शैली उनकी प्राचीन है। कहानी कला का सौष्ठव इनमें भले ही उपलब्ध न हो, पर उस युग में भी कहानी लोकप्रिय थी और अपने मत का प्रचार करने का प्रभावशाली साधन समझी जाती थी, यह स्पष्ट है। कभी कभी उनका लिखित रूप भी सामने आ जाता था।

सं० १६८० में जटमल ने "गोरा बादल री बात" राज-स्थानी में लिखी पर इसका मूल रूप उपलब्ध नहीं है।

हिन्दी की प्रथम कहानी

कहानी के नाम पर लिखी जाने वाली सर्व प्रथम मौलिक रचना इंशा अल्ला खाँ की "रानी केतकी की कहानी" है। यह कहानी संवत् १८६० के आस-पास लिखी गई। इंशा का उद्देश्य ठेठ हिन्दी लिखने का था इसलिये उन्होंने चटकीली, मुहावरेदार और चलती हुई भाषा का प्रयोग किया। इनकी भाषा में विशेषण और विशेष्य के बीच या कृदन्त के साथ समानाधिकरण प्रयोग पाया जाता है:—

"डोमनियों के रूप में सारङ्गियां छेड़-छेड़ सोहैली गाओ" या "घरवालियां जो किसी डौल से बहलातियाँ हैं।" आदि। वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी जब हम इस पर विचार करते हैं तो यह रचना कहानी परम्परा से अलग नहीं दिखाई पड़ती। इसमें जोग-भभूत, जन्तर-मन्तर, जादू-टोना और आश्चर्य-जनक घटनाओं तथा दृश्यों की भरमार है। हां, इस कहानी के द्वारा उन्होंने कथा-साहित्य में एक नवीन परम्परा की नींव अवश्य डाली है। संक्षेप में कथानक इस प्रकार है:—

"कुंवर उदैभान राजा सूरजभान का लड़का था। उसकी माता का नाम लक्ष्मीवास था। एकदिन वह शिकार में एक हिरन के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ घनी अमराईयों में जा पहुँचा। वहाँ रानी केतकी चालीस पचास युवती सेविकाओं के साथ झूला झूल रही थी। रानी केतकी उस पर मुग्ध हो गई। रात

को जब वहाँ उदैभान सो रहा था, रानी केतकी अपनी सहेली मदनवान के साथ उसके पास गई। उदैभान को पता चला कि रानी केतकी, राजा जगत प्रसाद की बेटी है और उसकी माता का नाम कामलता है। दोनों ने अँगूठियाँ बदल लीं और गन्धर्व विवाह कर लिया। घर पहुँच कर उदैभान बहुत खिन्न रहने लगा।

राजा सूरजभान ने रानी केतकी के पिता के पास विवाह का सन्देश भेजा पर उसने अस्वीकृत कर दिया। सूरजभान ने राजा जगतप्रकाश पर आक्रमण कर दिया। उदैभान और रानी केतकी ने पत्र द्वारा यह निश्चय किया कि वे दोनों अन्यत्र भाग जांय। इधर जगतप्रकाश ने कैलाश-निवासी अपने गुरु का स्मरण किया। उन्होंने आते ही उदैभान और उसके माता-पिता को हिरणी बनाकर छोड़ दिया। एक दिन रानी केतकी ने आँख मिचौनी खेलने के बहाने, गुरू जी द्वारा दी गई वह भभूत, जिससे अदृश्य हुआ जा सकता था, अपनी माँ से ले ली और अदृश्य हो उदैभान की खोज में चल पड़ी।

राजा जगतप्रकाश ने पुनः अपने गुरू महेन्द्र गिरि को बुलाया। उन्होंने तीनों को पुनः मनुष्य बना दिया और उदैभान तथा रानी केतकी का विवाह हो गया।"

यद्यपि अब तक कथानकों का रूप धार्मिक ही रहा किन्तु इसमें इंशा अल्ला ने सर्व प्रथम लौकिक प्रेम और शृङ्गार की अवतारणा की। सूफी कथानकों में भी प्रेम-भावना उपलब्ध होती है, परन्तु उनमें आध्यात्मिकता का पुट वर्तमान है। इसमें अलौकिक घटनाओं का समावेश तो है ही, कहानी को भारतीय परम्परा के अनुकूल ही सुखान्त बनाया गया है।

इंशा अल्ला मुसलमान थे, इसलिये हिन्दू-पात्रों का चरित्र चित्रण स्पष्टता के साथ नहीं कर सके। यद्यपि रानी केतकी आदर्श-प्रेमिका है, किन्तु पान की पीक से पत्र का उत्तर लिखना अशिष्ट-सा जान पड़ता है। कहानी के वर्णनात्मक होने के कारण वार्तालाप का अभाव सा है, किन्तु जहां कहीं संवाद हैं, वे मनोरञ्जक, स्वाभाविक और चित्ताकर्षक मालूम पड़ते हैं। बीच-बीच में पद्यों का प्रयोग, शब्दचित्रों का अवतरण और अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन भी उपलब्ध होता है। कहानी में न तो गम्भीर तथ्यों का समावेश है, न मनोभावों के चित्रण की ओर ही ध्यान दिया गया है। अतः पात्र, चरित्र-चित्रण और वातावरण सभी की दृष्टि से यह कहानी मध्यम श्रेणी की होते हुए भी मनोरञ्जक और कुतूहल-वर्द्धक है। अद्‌भुत-शैली और मुहावरों के प्रयोग से कहानी में स्थायी हास्य भी उत्पन्न हुआ है, जो उसे सजीव और आकर्षक बना देता है।

श्री लल्लूलालः—

जिस समय 'रानी केतकी की कहानी' लिखी गई उसी समय श्री लल्लूलाल जी ने "सिंहासन बत्तीसी और बैताल-पचीसी" की कहानियों का उर्दू में रूपान्तर किया। ये कहानियाँ हिन्दी पाठकों द्वारा बड़े चाव से पढ़ी गईं। यद्यपि ये कहानियाँ सीधे-सादे ढंग से लिखी गई हैं पर अत्यन्त ही सरस और रमणीय हैं। संवत् १८६० में फोर्ट विलियम कालेज में नियुक्त होने के बाद इन्होंने खड़ी बोली गद्य में प्रेमसागर लिखा। इसमें भागवत के दशम स्कन्ध की कथाओं का वर्णन है। इसकी भाषा कथा-वाचकों की तरह है और जगह-जगह

बड़े बड़े वाक्य, अनुप्रासों की छटा और बीच-बीच में पद्यों का प्रयोग दिखाई देता है। कहानी कला की दृष्टि से प्रेम सागर की कहानियों को महत्व नहीं दिया जा सकता। वर्णन की शैली इतिवृत्तात्मक है तथा कहानियों के आरम्भ और अन्त में किसी प्रकार का आकर्षण नहीं है। विशिष्ट घटनाओं को लेकर लिखे गये 'जीवन चरित' से इसका अधिक साम्य है।

संवत् १८६६ में 'हितोपदेश' की कहानियों का ब्रजभाषा गद्य में इन्होंने अनुवाद किया। प्रेम सागर की अपेक्षा, इनकी अनुवादित उक्त कहानियां जन-सामान्य में अधिक प्रचलित और प्रिय हुईं। इन अनुवादों से स्पष्ट है कि हिन्दी गद्य के साहित्य में प्रयोग होने के आरम्भ-काल में ही अपनी सर्वप्रियता के कारण कहानियों ने अधिकार जमाना आरम्भ कर दिया था। जन-रुचि को हिन्दी लिखने-पढ़ने की ओर आकृष्ट करने में इन कहानियों ने बहुत योग दिया। इनके तीनों अनुवादित ग्रन्थों का संस्कृत के लोकप्रिय कथा ग्रन्थों में उल्लेख हो चुका है।

पं० सदल मिश्र:—

कहानी-परम्परा में सदल मिश्र के "नासिकेतोपाख्यान" का भी महत्वपूर्ण स्थान है। कठोपनिषद् में वर्णित यम और नचिकेता की कथा के आधार पर ही यह उपाख्यान लिखा गया है। इसकी कथा इस प्रकार है:—

ब्रह्मा के पुत्र उद्दालक ऋषि बड़े ही तपस्वी थे। एक दिन पिप्पलाद मुनि ने उनसे कहा कि पुत्र के अभाव में उनकी तपस्या व्यर्थ है। वृद्ध उद्दालक ऋषि, ब्रह्मा के पास गये और ब्रह्मा ने उन्हें स्त्री और पुत्र की प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। एक दिन स्नान

के वाद ध्यानमग्न ऋषि का वीज-पतन हो गया ; उन्होंने उसे कमल में बांध कर बहा दिया।

राजा रघु की कन्या चन्द्रावती सहेलियों के साथ गङ्गा-तट पर गई थी। उसने उस बहते हुये फूल को मंगवाकर सूंघा। वीज नाक के मार्ग से उसके पेट में चला गया और वह गर्भवती हो गई। राजा ने उसे देश निकाला दे दिया। वह ऋषियों के आश्रम में चली गई, जहां उसके नाक से एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। नाक से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम नासिकेत रक्खा गया। ऋषियों की सेवा में विघ्न होते देख, उसने नासिकेत को घास के वोझे पर रखकर गङ्गा में बहा दिया। गङ्गा स्नान करते हुये उद्दालक ऋषि को वह पुत्र प्राप्त हुआ।

चन्द्रावती पुत्र-वियोग से व्याकुल हो उसे पुनः ढूंढने के लिये निकली। उद्दालक के आश्रम पर उसे नासिकेत मिला। समस्त कथा के जानने पर उद्दालक ने चन्द्रावती को राजा रघु से मांग लिया और आश्रम पर लौट आये।

एकदिन उद्दालक ने नासिकेत को कन्द-मूल लाने के लिये वन में भेजा। नासिकेत वहीं समाधिस्थ हो गये। सौ वर्ष वाद जव वे लौटे तो पिता-पुत्र में गहरा विवाद हुआ और पिता ने उन्हें यम को सौंप दिया। यम से अनेकों वर प्राप्त करके वे पुनः लौट आये और ऋषियों को वहां का पूर्ण विवरण सुनाया।

कथावस्तु की दृष्टि से इसमें नासिकेत की उत्पत्ति तक का भाग ही पूर्ण एवं कहानी का सजीव कथानक (Plot) मालूम होता है। द्वितीय भाग, वर्णनात्मक है और यमपुरी के दृश्य का चित्रण में ही समाप्त हुआ है। कहानी के आवश्यक

तत्व, वातावरण आदि प्रथम भाग में ही उपलब्ध होते हैं। कठोपनिषद् की कथा में ब्रह्मज्ञान को ही प्रधानता दी गई है तथा वहाँ प्रश्नोत्तरों का जोर है; परन्तु इसमें कथा को अधिक महत्त्व दिया गया है। द्वितीय भाग में भी ब्रह्मज्ञान की विवेचना उपनिषद् की शैली में नहीं है, फिर भी लोकशिक्षा का ध्यान रखा गया है। सरल और सुबोध भाषा में लिखी गयी यह कहानी अत्यन्त ही मनोरञ्जक और कौतूहलपूर्ण है।

हिन्दी के इन तीनों ही गद्य-प्रवर्तकों की रचनाओं का उद्देश्य भाषा का स्वरूप स्थिर करना था; यही कारण है कि वर्ण्य-विषय की साहित्यिक उत्कृष्टता और उसके कलात्मक रूपों की अभिव्यंजना की ओर इनका ध्यान नहीं गया। संस्कृत की परम्परा के विच्छिन्न हो जाने के कारण उन्हें कहानीकला का आदर्श रूप तो प्राप्त हो नहीं सका; हां, कहानियों की लोकप्रियता को आधार बनाकर उन्होंने गद्य का प्रवर्तन अवश्य किया। यही कारण है कि इन कहानियों को वर्तमान विकसित कहानीकला की तुला पर नहीं तौला जा सकता। वस्तुतः इन तीनों ही गद्यलेखकों ने अपनी रचनाओं द्वारा कथासाहित्य की शृङ्खला में तीन कड़ियाँ जोड़ी हैं। इन रचनाओं के ५० वर्ष बाद तक गद्यसाहित्य की विशिष्ट रचनायें उपलब्ध नहीं होतीं और कहानियों का वास्तविक आरम्भ तो प्रायः सौ वर्ष बाद होता है।

श्री विलियम कैरे और ईसाई मिशनरियां:—

खड़ी बोली गद्य की प्रतिष्ठा का सबसे अधिक लाभ ईसाई मिशनरियों ने उठाया। विलियम कैरे संवत् १८५० में

भारत आये। वे प्रोटेस्टेण्ट थे तथा अपने मत के प्रचार के लिये उन्होंने सिरा पुर में वापटिस्ट मिशन खोला। वाइविल का प्रचार ही उसका मुख्य उद्देश्य था। फोर्ट विलियम कालेज में अपनी नियुक्ति के बाद भी ये ईसाई धर्मग्रन्थों के अनुवाद कार्य में सिरामपुर मिशन को सहायता देते रहे। सं० १८७५ तक 'न्यू टेस्टामेण्ट और ओल्ड टेस्टमेण्ट' दोनों का ही प्रकाशन पूर्ण हो गया था। अनुवाद सम्बन्धी त्रुटियों को बाद में मार्टिन ने दूर करने का प्रयास किया। वाइविल आदि इन धर्मग्रन्थों के प्रकाशनों में कथायें भी अवश्य है पर उनका मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था। इन अनुवादों की भाषा विशुद्ध हिन्दी थी, अतः इनके प्रचार में सुविधा अवश्य हुई; कहानी की दृष्टि से इनका कोई मूल्य नहीं है।

राजा शिवप्रसादः—

संवत् १९१३ में राजा शिवप्रसाद शिक्षा विभाग में इन्सपेक्टर नियुक्त हुये। संयुक्तप्रान्त में हिन्दी को शिक्षाविभाग मे स्थान दिलाने का कार्य आपने ही पूरा किया। स्कूलों के लिये जो पाठ्य-पुस्तकें आपने तैयार कराई उनमें कई कहानियों को भी आपने स्थान दिया। राजा भोज का सपना, वीरसिंह का वृत्तान्त, आलसियों को कोड़ा आदि कहानियाँ इन्होंने स्वयं लिखी। 'राजा भोज का सपना' इनकी प्रसिद्ध कहानी है जिसमें राजा भोज के दान की महत्ता और उसके द्वारा प्राप्त होने वाले यश से उत्पन्न अहंकार की बुराई का दर्शन उनको स्वप्न में कराया गया है। अहंकार के कारण ही उनका सारा पुण्य पंखहीन पक्षी की भांति तड़फ उठता है और राजा को महान सत्य का दर्शन होता है। भाषा की दृष्टि से इसका चाहे जो

भी महत्व हो कहानी कला की दृष्टि से यह एक साधारण श्रेणी की रचना है। इसकी शैली उसी प्रकार की है जैसी पार्श्व में लेटे हुये बच्चे को कहानी सुनाने के लिये माँ प्रयुक्त करती है। इसका प्रारम्भ—"वह कौन सा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी राजा भोज का नाम न सुना हो" इस वाक्य से तथा अन्त—"हे पाठक जनो! तुम भी भोज की नाईं उस राह को ढूँढते हो और भगवान से उसके मिलने की प्रार्थना करते हो। भगवान तुम्हें शीघ्र ऐसी बुद्धि दे और अपनी राह पर चलावे, यही हमारा अन्तःकरण से आशीर्वाद है" इस कथन से हुआ है। बूढ़ी माँ की तरह ही उन्होंने पाठकों या श्राताओं को हार्दिक आशीर्वाद भी दे दिया है। एक पंक्ति में सम्पूर्ण कहानी का तत्व और निष्कर्ष रूप उपदेश भी लिख दिया गया है—"जिन ढूँढा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ"। इसकी भाषा वर्तमान समय की प्रचलित हिन्दी स मिलती-जुलती है। भाव-प्रकाशन की विधि, शब्दावली और वाक्यविन्यास सभी सुन्दर हैं। साधारण प्रयोग में आने वाले संस्कृत के चलते हुये तत्सम शब्दों को भी ग्रहण किया गया है। बाद की अपनी रचनाओं में उन्होंने "बैताल पचीसी" की भाषा, उर्दू अपना ली।

संवत् १६१६ में पं० बद्रीलाल जी ने "हितोपदेश" का अनुवाद किया जिसमें केवल चुनी हुई कथायें ही दी गई हैं।

आधुनिक काल में भी कहानियों के दो रूप उपलब्ध होते हैं, मौलिक और अनुवादित। अनुवादित अंश में संस्कृत के लोकप्रिय कथासाहित्य के ग्रन्थ ही मुख्य हैं। बृहत् कथा, सिंहासन बतीसी और बैताल पचीसी आदि की कथाओं में घटनाओं का इतिवृत्तात्मक वर्णन ही प्रधान है। मार्मिक स्थलों को

स्पर्श करने की क्षमता इनमें अधिक नहीं है। इनमें कथा को गति और प्रवाह तो है पर दृश्यचित्रण का अभाव है। विभिन्न घटनाएँ एक ही कथा शृङ्खला की क्रमशः जुटी हुई कड़ियाँ मालूम होती हैं।

मौलिक कहानियां भी प्रायः इसी प्रकार की पहले पहल लिखी गईं जिनमें कथाक्रम के इतिवृत्तात्मक वर्णन की ही प्रधानता रही। कुछ स्थलों पर दृश्यचित्रण भी हैं पर मर्म को स्पर्श करने वाले स्थलों का अभाव है। इशाँ अल्ला और राजा शिवप्रसाद की कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। ये कहानियाँ अपनी परम्परा और शैली में सर्वथा मौलिक और अन्य भाषा के प्रभाव से अछूती हैं क्योंकि आगे लिखी जाने वाली कहानियों में शैली की दृष्टि से एक महान क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। श्री गदाधरसिंह द्वारा अनुवादित 'कादम्बरी' एक बड़ी कहानी के रूप में मालूम होती है जिसमें आधुनिकता की पूरी छाप है।

आधुनिक कहानियों का प्रयोग काल—

अंग्रेजों के सम्पर्क और यूरोपीय साहित्य के अध्ययन से वंगभाषा के ख्यातिप्राप्त लेखकों ने पाश्चात्य शैली का अनुकरण आरम्भ कर दिया। यह अनुकरण साहित्य के अन्य अङ्गों की अपेक्षा उपन्यास और कहानियों में बहुत अधिक हुआ। वंग-साहित्य में अंग्रेजी के नावेल (Novel) उपन्यास तथा छोटे कथानक (Short Stories), गल्प बन गए। इन गल्पों में जीवन के मार्मिक स्थलों की अभिव्यंजना की जाती थी और इतिवृत्तात्मक वर्णन की अपेक्षा घटनाओं को मार्मिक ढंग से

उपस्थित करने का प्रयास किया जाता था। बंगला साहित्य का प्रभाव हिन्दी के विभिन्न क्षेत्रों पर पड़ रहा था।

बंगभाषा के उपन्यासों और नाटकों के साथ ही साथ गल्पों का भी अनुवाद प्रारम्भ हुआ। संवत् १९५७ में इंडियन प्रेस से प्रकाशित सरस्वती पत्रिका में अनुवादित कहानियों के अतिरिक्त कुछ मौलिक कहानियाँ भी प्रकाशित हुईं। आधुनिक कहानियों का वास्तविक आरम्भ इन्हीं कहानियों से माना जाता है। आचार्य शुक्ल जी ने सरस्वती में प्रकाशित प्रारम्भिक कहानियों में से निम्नलिखित कहानियों को मौलिक माना है:–

इन्दुमती (किशोरीलाल गोस्वामी)	सं० १९५७
गुलबहादुर (,, ,,)	,, १९५९
प्लेग की चुड़ैल (मास्टर भगवानदास, मिरजापुर)	,, १९५९
ग्यारह वर्ष का समय (रामचन्द्र शुक्ल)	,, १९६०
पण्डित और पण्डितानी (गिरिजादत्त वाजपेयी)	,, १९६०
दुलाईवाली (बङ्ग महिला)	,, १९६४

"इन्दुमती"—

आ० शुक्ल जी ने "इन्दुमती" को आधुनिक युग की प्रथम मौलिक कहानी माना है। इसका कथानक इस प्रकार है:—

"इन्दुमती विन्ध्याचल के सघन वन में अपने पिता के साथ रहती है। वन में रहने के कारण उसने किसी अन्य मनुष्य को नहीं देखा था। अजयगढ़ का राजकुमार चन्द्रशेखर पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी की हत्या करके भागता है। इब्राहीम का एक सेनापति उसका पीछा करता है तथा वह विन्ध्याचल के घने जङ्गल की ओर भागता है, जहां घोड़े के मर जाने

के कारण वह एक पेड़ के नीचे भूखा-प्यासा पड़ जाता है। इन्दुमती उसे देखते ही मुग्ध हो जाती है। चन्द्रशेखर भी उससे प्रेम करने लगता है। इन्दुमती का वृद्ध पिता देवगढ़ का राजा था। इब्राहीम लोदी ने उसका राज्य छीन-लिया था जिससे वह जङ्गल में रहता था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो इब्राहीम लोदी को मारेगा उसी के साथ वह इन्दु का विवाह करेगा। चन्द्रशेखर ने इस प्रतिज्ञा को अनजाने में ही पूरा कर दिया था। चन्द्रशेखर और इन्दुमती के सच्चे प्रेम को देखकर इन्दु के पिता ने दोनों का विवाह कर दिया, क्योंकि चन्द्रशेखर की प्रेम परीक्षा के लिये इन्दु के पिता ने उससे कठिन परिश्रम कराया था।"

सरस्वती में इसी समय शेक्सपियर के कई नाटकों का कहानी-रूप में अनुवाद प्रकाशित हुआ। इसीलिये डा० श्रीकृष्णलाल ने इसे शेक्सपियर के "टेम्पेस्ट" का भारतीय वातावरण के अनुकूल रूपान्तर कहा है। परन्तु प्राचीन भारतीय जीवन में ऐसी अनेकों कथाएँ मिलती हैं जिनमें क्षत्रिय राजा भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिज्ञायें करते हैं और उनकी पूर्ति करने वाले के साथ ही अपनी लड़की का विवाह कर देते हैं। ऐसी प्रतिज्ञाओं में वीरता की परख का एक विशिष्ट भाव होता था। एक विशिष्ट प्रतिज्ञा की पूर्ति के बाद ही राम को सीता और अर्जुन को द्रौपदी प्राप्त हुई थीं। गोस्वामी जी ने अनेकों ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। अनुसन्धान का उनमें उत्कृष्टतम रूप भले ही न हो, पर भारतीय इतिहास का प्रभाव उनकी रचनाओं पर स्पष्ट ही दिखाई पड़ता है। राजपूत जीवन में भी इस प्रकार की कहानियों की कमी नहीं, इसलिये इस कहानी को भारतीय-परम्परा में न रख किसी अंग्रेजी कथानक का

रूपान्तर कहना ठीक नहीं है। गोस्वामी जी की दूसरी मौलिक-कहानी "गुलबहार" है जो संवत् १६५६ में निकली। यह कहानी बङ्ग शैली से अवश्य अनुप्राणित है।

'ग्यारह वर्ष का समय'—

शुक्ल जी की कहानी "ग्यारह वर्ष का समय" भी भाव और मार्मिकता की दृष्टि से मौलिक है, किन्तु इसकी अभिव्यक्ति बिल्कुल पुरानी कहानियों के ढङ्ग की है। इसकी भाषा भारी भरकम और बोझिल है।

'दुलाई वाली'—

जीवन की सामान्य घटना को लेकर लिखी जाने वाली प्रथम कहानी बङ्ग महिला की "दुलाई वाली" है। इसका कथानक अत्यन्त ही विचित्र है। वंशीधर का एक मित्र नवलकिशोर अत्यन्त ही हँसमुख है। वह अपनी पत्नी के साथ इलाहाबाद जा रहा है। वंशीधर बनारस से जल्दी-जल्दी चलकर मुग़लसराय पहुँचता है कि अपने मित्र के साथ वह भी इलाहाबाद जाय किन्तु मुग़लसराय स्टेशन पर वह अपने मित्र को नहीं पाता। मिरजापुर स्टेशन पर वंशीधर के डिब्बे में एक स्त्री मिली जो इसलिये रो रही थी कि उसका पति मिरजापुर स्टेशन पर गाड़ी से छूट गया। उसी डिब्बे में दुलाई ओढ़े एक दूसरी स्त्री भी बैठी थी। वंशीधर ने उस रोती हुई स्त्री को आश्वासन दिया और इलाहाबाद स्टेशन पर उतर कर उस स्त्री के पति का पता लगाने चले गये। इधर नवल किशोर जो दुलाई ओढ़े बैठे थे अपना रूप बदलकर तैयार हो गये और इस प्रकार अपने मित्र वंशीधर से मिले।"

नवलकिशोर की पत्नी और गाड़ी में बैठी हुई गांवों की अन्य स्त्रियों का संवाद मिरजापुर की स्थानीय बोली में कराया गया है। कथानक में अनोखेपन के साथ-साथ कथोपकथन द्वारा मधुर सम्भाषण और यथार्थ-चित्रण इस कहानी की विशेषताएँ हैं। 'इन्दुमती' के पात्र उच्चकुल के हैं और राजकुमार तथा राजकुमारी ही कथा के नायक-नायिका हैं, किन्तु 'दुलाई वाली' के पात्र सामान्य जन हैं। यथार्थ-जीवन के चित्र को अङ्कित करने वाली इस कहानी का महत्वपूर्ण स्थान है। कहानी का आरम्भ गति के साथ हुआ है और अन्त तक अतर्कित परिस्थिति बनी रही है, इस कारण चरम सीमा (Climax) का सुन्दर निर्वाह हुआ है। प्रसंगानुकूल कथोपकथन, स्वाभाविकता और मार्मिकता के कारण उस युग की यह अत्यन्त ही सफल कहानी कही जा सकती है। यह आश्चर्य है कि ऐसी सफल और मौलिक कहानी लिखी जाने के बाद भी कई वर्षों तक कहानी-साहित्य की गति बड़ी ही मन्द रही।

प्रयोग काल पर एक दृष्टिः—

संवत् १९५७ से ६७ तक का काल कहानी-साहित्य का प्रयोगकाल कहा जाता है। 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के प्रकाशन ने आधुनिक कहानीसाहित्य को जन्म और गति दी। सरस्वती ने 'सिम्बलिन' (Cymbeline) 'कौतुकमय मिलन' (Comedy of Erros) आदि इंग्लिश नाटकों के साथ साथ 'मालविकाग्निमित्र' और रत्नावली' जैसे संस्कृत के नाटकों का भी कथात्मक रूप प्रस्तुत किया। इस प्रकार अनुवादित कहानियों के साथ साथ 'इन्दुमती' जैसी मौलिक कहानियाँ भी सरस्वती में प्रकाशित हुईं।

सुदर्शन में भी कुछ अनुवादित और रूपान्तरित कहानियां निकलीं। इन कहानियों में न तो शैली का कोई स्थिर रूप था न आदर्श। पञ्चतन्त्र और हितोपदेश की छाया में पशु-पक्षियों को पात्र बनाकर "जम्बुकी न्याय" (सर० १९६३) आदि कुछ पद्य बद्ध कहानियां भी प्रकाशित हुई। 'निन्नानवे का फेर' (सर० १९६७) मैथिलीशरण जी गुप्त की भी एक पद्यबद्ध कहानी है। इन सभी कहानियों में उपदेश की प्रवृत्ति झलकती है। 'गृहलक्ष्मी' नामक पत्रिका ने भी कहानियों के प्रचार में बहुत भाग लिया। श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने संवत् १९६६ में "राखीबन्द भाई और तातार तथा एक वीर राजपूत" नामक कहानियाँ लिखी।

ये कहानियां प्राचीन नींव पर ही कथा साहित्य का नवीन महल तैयार करने का प्रयास-मात्र थीं। 'दुलाई वाली' कहानी ने ही कथावस्तु, पात्रों में साधारण व्यक्तियों के चुनाव, स्थानीय वैशिष्ट्य की झलक और मनोरञ्जन की सामग्री आदि के कारण आधुनिक कहानियों के मार्ग की ओर निर्देश किया।

शिक्षा की पाश्चात्य-प्रणाली के कारण पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति भी तीव्रगति से फैल रही थी। नागरिक जीवन की जटिलताओं ने लोगों को गाँवों की ओर झाँकने को बेचैन कर दिया। सामाजिक जीवन में उदारता, सहानुभूति आदि के भाव विलुप्त हो रहे थे—व्यक्ति की महत्ता बढ़ रही थी।

संवत् १९६८ में प्रकाशित गुलेरी जी की कहानी "सुख-मय जीवन" में साधारण परिस्थिति को लेकर ही मनोरंजक घटना की सृष्टि की गई है। ग्राम्य-चित्रण और संयोग को

प्रधानता के कारण उस समय की परिस्थिति और नागरिकों के अन्तः प्रवृत्तियों की स्पष्ट झलक मिलती है कि किस प्रकार गांव की ओर झुकाव बढ़ रहा था और कृत्रिमता से ऊबा मानव-मन यथार्थ और सच्चाई की खोज के लिये व्याकुल हो रहा था। ऐसे ही समय में प्रसाद जी ने कहानी क्षेत्र में पदार्पण किया। उनकी पहली कहानी 'ग्राम' में महाजन से सताई गई एक विधवा की करुण गाथा अङ्कित है, परन्तु प्रसाद जी की कवि-कल्पना ने शीघ्र ही दिशा-परिवर्तन कर लिया और वे आदर्श-वादी कहानियों की ओर झुक गये।

'प्रथम उत्थान का पूर्वार्द्ध'

श्री जयशंकर प्रसाद :—

मानव सौन्दर्य, प्रेम और करुणा के अमर कवि प्रसाद जी का कहानी क्षेत्र में पदार्पण सं० १६६८ में हुआ। इनकी सर्वप्रथम कहानी 'ग्राम' इन्दु पत्रिका में निकली थी। इस कहानी में कल्पना और भावुकता का पूर्ण समावेश है। प्रसाद जी के आगमन के समय हिन्दी साहित्य का सम्पूर्ण क्षेत्र 'रवीन्द्र' आदि बङ्गला के कलाकारों की रचनाओं से प्रभावित हो रहा था। उसी कोटि की माधुर्यगुण सम्पन्न रचनायें देकर प्रसाद जी ने काव्य, नाटक और कहानी तीनों ही क्षेत्र को बङ्गला के प्रभाव से मुक्त करने का प्रधान कार्य सम्पन्न किया। भाववादी कहानियों का सृजन, उनके करुणाकलित हृदय की देन थी।

प्रसाद जी की पांच कहानियों का पहला संग्रह "छाया" नाम से सं० १६६६ में निकला। भाव और कथानक की दृष्टि से सर्वथा मौलिक होते हुये भी इस संग्रह की कहानियों पर बङ्गला का बाह्य प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रसाद जी के व्यक्तित्व ने कुछ ही दिनों में इस प्रभाव से अपने को सर्वथा मुक्त कर लिया। उनकी विशद कल्पना-शक्ति ने 'रसिया बालम' जैसी वृहत्कथा भी दी जो प्रेमाख्यानक गद्यमय खण्ड काव्य कहा जा सकता है। मोहक दृश्यों के चित्रण में प्रसाद जी की

व्यक्तित्वमयी-शैली पूर्ण अभिव्यक्त हुई है। प्रसाद जी बहुत दिनों तक कहानी लिखते रहे और उनकी कला का क्रमशः विकास होता गया। इनकी भावात्मकशैली का अनुकरण कई प्रसिद्ध कहानी लेखकों ने किया।

आकाशदीप, इन्द्रजाल, प्रतिध्वनि और आंधी के नाम से इनकी अवशिष्ट कहानियों के चार संग्रह और निकले हैं। 'आकाशदीप' शीर्षक कहानी के प्रकाशित होने के पूर्व तक शब्दों की रङ्गीनी ही अधिक रही, पर इसमें प्रसाद जी का व्यक्तित्व पूर्ण निखर उठा है। भाव और भाषा दोनों का ही रूप इन्द्रधनुषी हो गया है। इसमें प्रसाद जी की कला स्पष्टरूप से झलक उठी है। कहानी के आरम्भ में ही एक मोहक वातावरण प्रस्तुत हो जाता है:—

'बन्दी !'

'क्या है ? सोने दो।'

"मुक्त होना चाहते हो ?"

'अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।'

'फिर अवसर न मिलेगा।'

'बड़ा शीत है यहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।'

'आंधी की सम्भावना है। यही अवसर है, आज मेरे बन्धन शिथिल हैं।'

'तो क्या तुम भी बन्दी हो ?'

'हां, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और और प्रहरी हैं।'

"शस्त्र मिलेगा ?"

'मिल जायगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?'

"हां।"

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे। पहले बन्दी ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया। दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक-दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा-स्नेह का असम्भावित आलिंगन। दोनों ही अन्धकार से मुक्त हो गये। दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से, उसको गले से लगा लिया। सहसा उस बन्दी ने कहा—"यह क्या ? तुम स्त्री हो?"

× × × ×

तारक खचित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अन्धकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों में विकल थी।"

उक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद जी की कवि कल्पना कहानियों को भी भावजगत की रमणीय स्थली पर ही खींच ले जाती है। कवि की अन्वेषण प्रवण दृष्टि अन्तः और बाह्य (प्रकृति; जगत के मिलन-स्थल में ही कुछ ढूंढने में तल्लीन हैं। मानव जगत के यथार्थ प्राणियों को प्रसाद जी उसी स्वप्न लोक में विचरण कराते हैं। वस्तु की दृष्टि से इसमें असफल प्रेम का ही चित्रण है, पर प्रारम्भ और विकास, चरित्र-चित्रण तथा संवाद और ध्वन्यात्मक शैली तथा कसक-पैदा करने वाले अन्त के कारण कहानी में मोहिनी-शक्ति आ गई है। अन्तिम

कर सके। इनकी कहानियों का उद्देश्य भी चाहे जैसे-तैसे पाठकों को हँसाना ही मालूम होता है इसलिए दूसरों को विद्रूप करके और उन्हें बेवकूफ बनाकर ही उन्होंने हास्य का सृजन किया है, इसके लिये साहित्यिक दृष्टि से अश्लील बातें कहने में भी वे हिचकिचाए नहीं हैं। अवाञ्छनीय कटाक्ष और अतिरञ्जित या अतिनाटकीय प्रसङ्गों की अवतारणा की गई है। अपने पात्रों के प्रति करुणा, दया या सहानुभूति भी वे जागृत नहीं कर सके हैं, यही कारण है कि आलोचकों को उनकी रचनाओं में उच्चकोटि के शिष्ट-हास्य का अभाव दिखाई पड़ता है। 'लम्बी दाढ़ी' के मौलवी साहब को विभिन्न प्रकार से जलील होते हुए देखकर भी उनके प्रति कोई विशिष्ट भाव पैदा नहीं होता।

श्री वास्तव जी की कहानियों की अपेक्षा मोटेराम शास्त्री को आलम्बन बनाकर प्रेमचन्द जी ने जो कहानियां लिखीं वे अधिक उच्चकोटि की हैं और उनमें पेटू और हँसमुख ब्राह्मण के रूप में नायक को चित्रित कर प्रेमचन्द जी ने शिष्टता और प्राचीन-परम्परा दोनों का ही हास्यरस में पालन किया है।

श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा—

संवत् १९६९ में श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा की प्रथम कहानी 'परदेशी' प्रकाशित हुई। यह कहानी भी वातावरण प्रधान है और वस्तु तथा चारित्रिक अभिव्यक्ति के कारण अत्यन्त ही सुन्दर है। यह कहानी बहुत कुछ अंशों में सुन्दर बन पड़ी है, किन्तु कहानी-क्षेत्र से ये शीघ्र ही हट गये।

राजा राधिकारमण सिंह:—

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की अत्यन्त ही भावुकता-
पूर्ण प्रथम कहानी "कानों में कंगना" संवत् १६७० में 'इन्दु' में
निकली। इसका कथानक तो सुन्दर है ही परन्तु मधुर और
कवित्वपूर्ण भाषा का भी इसमें प्रयोग किया गया है। भावना-
प्रधान कहानी लेखकों में राजा साहब का भी एक महत्वपूर्ण
स्थान है। 'बिजली' शीर्षक इनकी कहानी अत्यन्त ही प्रभाव-
शाली है। उसमें नायक ने अद्भुत और साहसपूर्ण प्रेम का
परिचय दिया है। विषय और भाषा-शैली की दृष्टि से अपनी
प्रारम्भिक कहानियों के आधार पर ये प्रसाद जी के आदर्श-
वादी दल में सम्मलित किए जा सकते हैं।

बाद की कहानियों में इनकी भाषा-शैली में आश्चर्य-
जनक परिवर्तन हो गया और इन्होंने एक सर्वथा नवीन मार्ग
अपना लिया। लोकोक्तियों और मुहावरों के अतिरिक्त उर्दू
शब्दों की भरमार होने लगी। वातावरण और दृश्य-चित्रण
की ओर से तो संभवतः इन्होंने आँखें हीं बन्द करली और भाषा
के चमत्कार-प्रदर्शन में लग गये। "पद का मद" इसी प्रकार
की कहानी है और उसमें इनकी परिवर्तित शैली का पूर्ण परिचय
मिल जाता है। इसका आरम्भ देखिए:—

" जो आज की जैसी तंगी में एक हद तक हवा पीकर
जीता है उसे शायद कहीं हवा खाने की जरूरत नहीं; मगर पाँव
पर पाँव रख पुलाव कलिया सुड़कने वाला अगर एक एड़ी का
पसीना चोटी तक उठाते हुए सुबह-शाम मैदान की हवा न
खाय, तो वह कलिया लगता है जैसे आँतों में कुलाँच लेने...

और कहीं आगे छलाँग मार उसकी भूख ही को पकड़कर खा गया, तो फिर लीजिए, बैठे-बिठाये आतें गले पड़ीं।"

× × × ×

"मोटर चली गई, जोटीराम पेड़ के नीचे इस तरह टहलता रहा, जिसमें कोई जान पहिचान वाला निकले तो चीन्हने न पावे।"

इसमें चीन्हने शब्द का प्रयोग सर्वथा ग्रामीण है। कथा-वस्तु की दृष्टि से इन्होंने सामाजिक समस्याओं पर अधिक ध्यान दिया है और अपनी कहानियों में व्यावहारिक सत्यों का ही उद्घाटन किया है। ये कहानियाँ आधुनिक युग में लिखी गई हैं और इन पर यथार्थवाद का पूरा प्रभाव पड़ा है। अपने प्रारम्भिक काल में ये भावनाप्रधान रहे और बाद में भाषा और वस्तु-विन्यास दोनों ही दृष्टि से आधुनिक युग के कहानीकारों में आ गये।

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक':—

विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' की पहली कहानी "रक्षा बन्धन" संवत् १९७० में प्रकाशित हुई। इस कहानी में संयोग और दैवी घटना को मुख्य स्थान प्राप्त है। कथानक का सम्पूर्ण विकास इसी पर आधारित है। कौशिक जी की कला जिस रूप में विकसित हुई है उसका बीज इस कहानी में वर्तमान है। सारी कहानी कथोपकथनात्मक शैली में लिखी गई है। 'एक भ्रातृहीन बालिका राखी बाँधने के लिये उदास अपने दरवाजे पर खड़ी है। अचानक ही एक युवक उसकी करुण इच्छा को जानकर राखी बँधवा लेता है और कुछ पैसे देकर

चला जाता है, घर आने पर युवक ने उस राखी को सुरक्षित अपने बक्स में रख दिया। पाँच वर्ष बाद इस युवक घनश्याम का मित्र अमरनाथ उसके विवाह के लिए एक लड़की ठीक करता है। वह लड़की और कोई नहीं, वही राखी बाँधने वाली लड़की है और दोनों भाई-बहनों का मिलन होता है।'

कथोपकथन में नाटकीय तत्वों का पूर्ण समावेश किया गया है। स्वाभाविकता, सरलता और अभिनयात्मकता इनके संवादों की विशेषताएँ हैं। संवादों में शिष्ट हास्य की भी झलक दिखाई पड़ती है।

अमरनाथ—(घनश्यान से) तुम्हारे लिये दुलहिन ढूंढ ली है।

सब—(एक स्वर से) फिर क्या तुम्हारी चांदी है।

अमरनाथ—फिर वही दिल्लगी। यार तुम लोग अजीब आदमी हो।

तीसरा—अच्छा बताओ, कहांढूंढी ?

अमरनाथ—यहीं, लखनऊ में।

दूसरा—लड़की का पिता क्या करता है ?

अमरनाथ—पिता तो स्वर्गवास करता है।

तीसरा—यह बुरी बात है।

इनकी कहानियाँ कथानक प्रधान हैं जिनमें चरित्र-चित्रण और वातावरण की अपेक्षा मानवहृदय की उन उलझनों पर विशेप बल दिया जाता है जो विशिष्ट परिस्थितियों में पैदा हो जाती हैं। इनकी सभी कहानियाँ किसी ध्येय विशेप को लक्ष्य करके चलती हैं और उनका उद्देश्य गृहस्थ-जीवन की किसी न किसी उलझन का चित्रण करना होता है।

चित्रशाला (दो भाग), मणिमाला, गल्पमन्दिर और कल्लोल आदि इनके कहानी संग्रह हैं। गृहस्थजीवन का विशद एवं सजीवचित्रण, सरल और स्वाभाविक शैली, विनोदप्रियता तथा शिष्ट हास्य, संयोग और दैवी घटनाओं का आश्रय इनकी कहानियों की विशेषताएँ हैं। रक्षा-बन्धन के अतिरिक्त 'पावस पतित' प्राचीन और "ताई", "स्मृति" तथा "छोटा भाई" आदि आधुनिक काल की प्रमुख कहानियाँ हैं। प्रारम्भ से लेकर अन्ततक इनकी शैली में परिवर्तन न होकर क्रमशः विकास हुआ है और ये संवादात्मक शैली के प्रथम कहानी-लेखक माने जा सकते हैं।

पं० ज्वालादत्त शर्मा:—

हिन्दी कहानियों के विकास में पं० ज्वालादत्त शर्मा का भी एक विशिष्ट स्थान है। आपने संवत् १९७१ से कहानी लिखना आरम्भ किया। सामाजिक रूढ़ियों के प्रति असन्तोष और परम्परागत प्रथाओं का खण्डन ही इनकी कहानियों का मुख्य उद्देश्य था। आपने हिन्दू परिवार के सांस्कृतिक जीवन-संघर्ष का चित्रण वर्णनात्मक शैली में किया है किन्तु इन कहानियों में एक कलाकार की अपेक्षा उनका समाज-सुधारक-रूप ही अधिक प्रकट हुआ है।

कौशिक जी की तरह इनकी कहानियों में भी संयोग और दैवी घटनाओं का उपयोग किया गया है। इनकी शैली इतनी आकर्षक नहीं है कि पाठक को प्रारम्भ में ही आकृष्ट कर ले। अपनी "अनाथ बालिका" शीर्षक कहानी में इन्होंने बीच-बीच में पत्रों का भी प्रयोग किया है। शैली की अनिश्चितता के

कारण इनकी कहानियों का रूप स्थिर न रह सका और जिस समाज-सुधार की भावना को लेकर इन्होंने कहानियाँ लिखीं, उस आर्यसमाजी सुधारवाद युग के समाप्त होते ही ये कहानी-क्षेत्र से भी अलग हो गए। "विधवा", "कहानी लेखक" आदि कहानियां इनकी कला के उदाहरण हैं।

श्री चतुरसेन शास्त्री—

श्री चतुरसेन शास्त्री की पहली कहानी संवत् १९७१ में "गृह-लक्ष्मी" में प्रकाशित हुई जो प्रयाग से प्रकाशित होने वाली महिलाओं की एक अच्छी मासिक पत्रिका थी। इस पत्रिका में श्री गिरिजा कुमार घोष की भी कुछ कहानियाँ लाला पार्वतीनन्दन के नाम से प्रकाशित हुई थीं, किन्तु कहानी-साहित्य के विकास में उनका कोई मूल्य नहीं। चतुरसेन शास्त्री ने परिमाण में बहुत अधिक कहानियाँ लिखी हैं।

इनकी भाषा ओजस्विनी और भावव्यंजक है। कहानियों की अपेक्षा इन्हें उपन्यासों में अधिक सफलता मिली है। इनकी कहानियों का सम्मान उसके कलात्मक गठन की अपेक्षा भाषा की अभिव्यंजना शक्ति के कारण अधिक है।

सफल और चरित्रप्रधान कहानियों में शास्त्री जी की "खूनी" कहानी अत्यन्त ही प्रसिद्ध है जो संवत् १९८१ में 'प्रभा' में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी में एक गुप्त संस्था के युवक सदस्य को अपने मित्र की हत्या, संस्था के नायक की आज्ञा से करनी पड़ती है। उसका मित्र भी उस संस्था का सदस्य था किन्तु वह संस्था के हत्याकार्यों का विरोधी था। अपने मित्र की हत्या करने के बाद वह युवक उस संस्था से संबन्ध-विच्छेद

कर लेता है किन्तु हत्या के समय दृष्टि पथ में आई हुई अपने मित्र की भोली चितवन को वह जीवनभर न भुला सका। इस सम्पूर्ण कहानी में खूनी के चरित्र की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है और उसका पश्चात्ताप तथा मानसिक संघर्ष ही कहानी का प्राण है। हत्या के समय उस खूनी युवक के मन में क्षण-क्षण में आने वाले अनेक संकल्प-विकल्पों को भी शास्त्री जी ने चित्रित किया है। दोनों मित्र जंगल में जाते हैं और एक-एक अमरूद लेकर खाने लगते हैं। खूनी की उस समय की मनःस्थिति का कितना सुन्दर चित्रण हुआ है:—

"मैंने चुपचाप अमरूद लिया और खाया। एकाएक मैं उठ खड़ा हुआ। वह आधा अमरूद खा चुका था, उसका ध्यान उसी के स्वाद में था। मैंने धीरे से पिस्तौल निकाली, घोड़ा चढ़ा था और अकम्पित स्वर में, उसका नाम लेकर कहा—"अमरूद फेंक दो और भगवान का नाम लो, मैं तुम्हें गोली मारता हूं।"

उसे विश्वास न हुआ। उसने कहा—"बहुत ठीक, पर इसे खा तो लेने दो।" मेरा धैर्य छूट रहा था मैंने दबे कण्ठ से कहा—"अच्छा खा लो।" खाकर वह खड़ा हो गया, सीधा तनकर। फिर उसने कहा—"अच्छा मारो गोली!" मैंने कहा, हँसी मत समझो, मैं तुम्हें गोली ही मारता हूं, भगवान का नाम लो।" उसने हँसी में ही भगवान का नाम लिया और फिर वह नकली गम्भीरता से खड़ा हो गया। मैंने एक हाथ से अपनी छाती दबाकर कहा—"ईश्वर की सौगन्ध! हँसी मत समझो, मैं तुम्हें गोली मारता हूं।"

मेरी आँखों से वही कच्चे दूध के समान स्वच्छ आखें मिलाकर उसने कहा—"मारो।"

एक क्षणभर विलम्ब करने से मैं कर्त्तव्य-विमुख हो जाता। पल-पल में साहस डूब रहा था। दनादन दो शब्द गूँज उठे। वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। दोनों गोलियाँ छाती को पार कर गईं थीं।"

संवत् १९९६ में प्रकाशित "सिंहगढ़ विजय" तथा १९९८ में प्रकाशित "वीर गाथा" नाम के संग्रहों में मध्यकालीन ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर लिखी गई कहानियां दी गई हैं। प्रथम संग्रह की "दे खुदा की राह पर" तथा "लाला रुख" कहानियों में शुद्ध प्रेम का चित्रांकन है जब कि अन्य कहानियों में राजपूती वीरता और शिवाजी-काल के अद्भुत युद्ध-कौशल का वर्णन ओजस्वी भाषा में किया गया है। दृश्यों का वास्तविक चित्रण और सुन्दर संवादों का भी प्रयोग किया गया है। 'सिंहगढ़ विजय' और 'पूर्णाहुति' शीर्षक कहानियों में अनावश्यक विस्तार हुआ है। द्वितीय संग्रह में त्याग और वीरता की झलक के साथ-साथ राजनीतिक अज्ञानता का भी दिग्दर्शन कराया गया है और राजपूती जीवन की झलक दिखाई गई है। भाषा में कहीं कहीं अरबी-फारसी के शब्दों का भी उपयोग हुआ है।

इस प्रकार परिष्कृत और ओज़स्वी गद्यात्मक शैली लिखने के कारण शास्त्री जी का कहानी-क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान बन गया है। उनकी प्रारम्भिक युग से लेकर अबतक की कहानियों में वस्तुविन्यास का ही परिवर्तन दिखाई पड़ता है, शैली-विन्यास का नहीं।

श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी—

संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित और प्रतिभाशाली विद्वान श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा लिखित अद्वितीय कहानी सं० १९७२ की 'सरस्वती' में छपी, यद्यपि इसके पूर्व ही 'सुखमय जीवन' नाम की उनकी कहानी सं० १९६८ में निकल चुकी थी पर बीच में कहानी लिखने का कार्य उन्होंने नहीं किया।

आचार्य शुक्ल जी के कथनानुसार उसने कहा था, हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कहानी है— "इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच सुरुचि की चरम-मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ सम्पुटित है। घटना इसकी ऐसी है जैसी बराबर हुआ करती है, पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झांक रहा है— केवल झांक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की बीभत्स विवृत्ति नहीं है। सुरुचि के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुंचता। इसकी घटनायें ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।"

इसका कथानक इस प्रकार है:— अमृतसर के बाजार में एक बालक और बालिका कभी-कभी आपस में मिल जाते हैं। स्वाभाविक आकर्षण से बालक उस बालिका पर ममताशील हो जाता है और एक दिन जान पर खेलकर उसकी प्राणरक्षा करता है। बातें करते हुये जब लड़का पूछता है-"तेरी कुड़माई हो गई" तो वह 'धत्' कहकर भाग जाती है। एक दिन उसे उत्तर मिलता है—"हाँ" वह मर्माहत होकर आकुल हो उठता

है और सारी कसर खोमचेवाले और कुत्ते पर निकालता और उलझता हुआ घर पहुंचता है।

वर्षों वीत जाते हैं, अब लहनासिंह फौज में जमादार है और लड़ाई पर जाने से पूर्व उसे सूबेदार का खत मिलता है कि वह भी साथ चलेगा। लहनासिंह उसके गांव जाता है, सुबेदारनी उसके बचपन की वही साथिन है। ममता का स्रोत एक बार पुनः दोनों के हृदय में उमड़ उठता है। वह लहना पर विश्वास रखती है और अपने पति तथा पुत्र को युद्धक्षेत्र में बचाने की भिक्षा मांगती है। लहनासिंह युद्धक्षेत्र में उसके बीमार पुत्र को अपने सारे गरम कपड़े पहनाता है उसके कार्य (Du.y) को पूरा करता है और जर्मन लेफ्टिनेएट की जालसाजी से उसके प्राण बचाता है जिसमें उसे एक गोली लगती है। जर्मन धावे के समय पुनः उसे एक गोली लगती है, लेकिन वह सूबेदार हजारासिंह और बोधा को वहां से जब तक भेज नहीं देता तब तक गिरता नहीं है। सूबेदार के जाने के समय वह कहता है:—

"सुनिये तो, सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।" मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। "जीवन की सम्पूर्ण घटनायें चल-चित्र की भांति मानस पट पर घूम जाती हैं और इसके पश्चात् उसकी इहलीला समाप्त हो जाती है।"

इस कहानी में कहानी-कला के वे सभी तत्व उपलब्ध होते है जो एक उत्कृष्ट कहानी के लिये आवश्यक हैं। कहानी

का आरम्भ आकर्षक है और अमृतसर की सड़कों का दृश्य आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। प्रसाद गुण सम्पन्न, स्पष्ट और सरल भाषा ने वातावरण को चित्रित करने में पूरी सहायता दी है।

'बड़े-बड़े शहरों के इक्के गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बू कार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुये इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं; कभी उनके पैरों की उंगलियों के पोरों को चीथकर अपने को ही सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में हर एक लड्डी वाले के लिये ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर 'बचो खालसा जी' 'हटो भाई जी' 'ठहरना भाई' 'आने दो लाला जी' 'हटो बाछा' कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बत्तकों तथा गन्ने खोमचे और भारे वालों के जङ्गल में से राह खेते हैं।"

काल्पनिक घटना को सत्य का रूप देने के लिये यथार्थ वातावरण प्रस्तुत करना आवश्यक है। भाषा की सजीवता और मुहावरों के प्रयोग ने इस वातावरण के सृजन में सहायता की है। वर्णन में स्वाभाविकता है और घटनाओं में संघटन। कहानी का सबसे प्रभावशाली अंश उसका अन्तिम भाग है जिसमें लहनासिंह मृत्यु की छाया में बैठा हुआ स्मृति-पटल पर

अतीत की संपूर्ण घटनाओं को एक-एक कर देख रहा है। कहानी के रहस्य का उद्घाटन भी यह अन्तिम अंश करता है कहानी की चरम सीमा (Climax) भी यही है।

लहनासिंह और लेफ्टिनेण्ट के संवाद में मनोविज्ञान का पूरा उपयोग किया गया है। घटनाओं का सामञ्जस्य, वातावरण की सृष्टि, दृश्य-चित्रण, चातुर्य से भरे संवाद, भाषा की सरलता, मुहावरों का प्रयोग और मनोवैज्ञानिक तथ्यों का प्रकाशन तथा कहानी का उसकी ओर झुकाव, वे विशेषताएँ हैं जिनके कारण यह कहानी अमर बनकर गुलेरी जी को भी अमर कर गई है।

लहनासिंह का चरित्र भी एक आदर्श प्रेमी के रूप में अङ्कित किया गया है। हृदय के अन्तरतम प्रदेश से बहती हुई स्नेह-सरिता का एक बूँद जल भी वासना के पङ्क से आविल नहीं है। वह बात का धनी है और प्रेम के लिये शारीरिक कष्टों की परवाह न करते हुये आत्म-बलिदान करता है। कथा साहित्य-जगत् के मानव पात्रों में लहना सा चरित्र दुर्लभ है। उसने कहा था- वह पहली कहानी है जिसने आधुनिक यथार्थ-वादी कहानियों के लिये मार्ग प्रशस्त किया।

"बुद्धू का कांटा" गुलेरी जी की तीसरी कहानी है। कथानक को आगे बढ़ाने के लिये इसमें कथोपकथन का ही आश्रय लिया गया है। व्यंग्य, हँसी और चुहलबाजी इसकी विशेषतायें हैं। भगवन्ती के संवादों में व्यंग्योक्तियों का प्रयोग लेखनशैली की प्रौढ़ता प्रदर्शित करता है। "किसी भी सच्चे कलाकार का सम्मान रचनाओं के परिमाण की बहुलता से नहीं उसकी उत्कृष्टतम कला के कारण होता है।" गुलेरी जी की

रचनाओं के सम्बन्ध में यह उक्ति शत प्रतिशत घटती है। यदि प्रेमचन्द जी के कथनानुसार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और यथार्थ चित्रण ही कहानी का ध्येय है तो गुलेरी जी की कहानियाँ मुख्यतः उसने कहा था वह पहली कहानी होगी, जिसने उक्त दोनों उद्देश्यों की पूर्ति की है।

प्रथम उत्थान के इस पूर्वार्द्ध काल में कहानी की कई शैलियाँ सामने आईं। इस काल में मुख्यतः चार प्रकार की कहानियां लिखी गईं। (१) जयशंकर प्रसाद जी, राजा राधिका रमणसिंह आदि ने आदर्शवादी और भावुकतापूर्ण कहानियाँ लिखीं। काव्य-कल्पना का पूर्ण समावेश इन कहानियों में मिलता है। (२) श्री कौशिक और ज्वालादत्त शर्मा की कहानिओं में संयोगों और आकस्मिक घटनाओं की प्रधानता है। कौशिक जी ने कथोपकथनात्मक शैली को अपनाया। (३) श्री गुलेरी जी और चतुरसेन शास्त्री को यथार्थवादी कहानी लेखकों की श्रेणी में रखा जा सकता है। वैसे तो कौशिक और ज्वालादत्त शर्मा की कहानियों को भी यथार्थवादी कहा जा सकता है पर उनकी आत्मा के साथ-साथ वाह्य पक्ष में भी केवल संयोगों की प्रधानता है। शास्त्री जी की कहानियाँ ओजस्विनी भाषा के कारण अधिक लोकप्रिय बनीं, कथावस्तु और तत्त्वों के प्रभाव से कम; फिर भी उनमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रवृत्ति पाई जाती है। एक गुलेरी जी की कहानी ही यथार्थवादी कहानियों की नींव डालने वाली कही जा सकती है। (४) श्रीवास्तव और विश्वम्भरनाथ जिज्जा ने हास्य रस की कहानियाँ लिखीं। पर श्रीवास्तव जी हास्यरस का उत्कृष्टतम रूप उपस्थित न कर सके।

आने आने वाले कई कहानी कलाकारों ने प्रसाद जी की परम्परा को जीवित रखा और वे भावुकतापूर्ण कहानियाँ लिखते रहे। जीवन के यथार्थचित्र को उपस्थित करने का प्रयास किया गया, पर कथा-प्रवाह के साथ साथ विभिन्न परिस्थितियों मे उठने वाली मानस तरङ्गों पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। प्रेमचन्द जी के आगमन ने इस कमी को पूरा किया। श्री पदुम-लाल पुन्नालाल वख्शी जी ने भी कुछ कहानियाँ लिखीं वे द्वितीय श्रेणी की संयोगप्रधान कहानियों में ही गिनी जायगीं। इस समय की प्राय: सभी कहानियों में जीवन को समीप से देखने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। 'इन्दु' के प्रकाशन से भावुकतापूर्ण कहानियों के क्षेत्र में अधिक सक्रियता आ गई।

'उत्तरार्द्ध काल'

श्री प्रेमचन्द—

यथार्थवाद की पृष्ठभूमि पर आदर्श की स्थापना करने वाले प्रेमचन्द जी की सर्वप्रथम कहानी "पंच परमेश्वर" संवत् १९७३ में प्रकाशित हुई। इस कहानी के कथानक का क्रम विकास आकस्मिक घटनाओं पर न होकर चरित्रों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं पर हुआ। यद्यपि कहानी का केन्द्र विन्दु चरित्र चित्रण ही नहीं है परन्तु फिर भी मनोवैज्ञानिक कहानियों में मनोविश्लेषण और प्रसङ्ग ही कहानी के प्राण होते है। भारतीय समाज का विशद और मार्मिक चित्रण इन्हीं की कहानियों में उपलब्ध होता है।

'सप्त सरोज' प्रेमचन्द जी का पहला कहानी संग्रह निकला। इसके विषय में शरत् वावू ने यह सम्मति दी थी— 'गल्पें वहुत उत्तम और भावपूर्ण हैं, रवीन्द्र वावू के साथ इनकी तुलना करना अन्याय और अनुचित साहस है पर और कोई भी वङ्गला लेखक इतनी अच्छी गल्पें लिख सकता है या नहीं, इसमें सन्देह है।' इस संग्रह की 'पंच परमेश्वर' और 'बड़े घर की बेटी' कहानियां उच्चकोटि की है। ग्राम्य-जीवन को गहराई से देखने वाले राजनैतिक क्षेत्र में या तो महात्मा गांधी थे या साहित्यिक क्षेत्र में प्रेमचन्द जी। प्रेमचन्द जी की रचनाएँ गांधी जी के विचारों का साहित्यिक रूप कही जा सकती

हैं। 'पंच परमेश्वर' में हिन्दू-मुस्लिम एकता का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

बड़े घर की बेटी में आनन्दी अपने देवर से रुष्ट होकर उसे घर से निकालने का निश्चय कर लेती है। पहले तो आनन्दी का पति उसे समझाने का प्रयत्न करता है, पर वह तो देवर से खड़ाऊँ की मार खाकर अपमानित हो चुकी है। एक तो वह उच्च कुल, सम्पन्न परिवार से इस छोटे गाँव में आई, आते ही उसने घर सँभाल लिया भोजन बनाते समय एक छोटी-सी बात पर उसके देवर ने उसे मार दिया, वह कैसे समझाने से मान जाती। किन्तु जब सचमुच ही उसके पति ने देवर श्रीकण्ठ को घर से निकाल दिया और जब वह रोता हुआ आनन्दी से विदा लेने आया तो वह द्रवित हो गई न केवल उसने स्वयं उसे क्षमा कर दिया अपितु पति से भी क्षमा दिला देती है। इस प्रकार कहानी का सुखद अन्त होता है। इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार एक बड़े घर की बेटी अपनी सहृदयता द्वारा एक परिवार को छिन्न-भिन्न होने से बचा लेती है। सम्मिलित परिवार की विशेषता सम्पूर्ण कहानी में दिखाई पड़ती है। आनन्दी के उज्ज्वल चरित्र की झलक दिखाना ही इस कहानी का उद्देश्य है।

प्रेमचन्द जी ने हिन्दी-साहित्य को ढाई सौ से ऊपर कहानियाँ दी है जो "मानसरोवर" के कई भागों में संगृहीत है। उनकी कहानियों की विशेषताएँ देखने के लिये उनके दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है। उनके शब्दों में कहानी की विशेषता मनोवैज्ञानिक रहस्य का उद्घाटन करना ही है। "यों कहना

चाहिए कि वर्तमान आख्यायिका या उपन्यास का आधार ही मनोविज्ञान है। घटनायें और पात्र तो उसी मनोवैज्ञानिक सत्य को स्थिर करने के निमित्त ही लाये जाते हैं; उनका स्थान बिलकुल गौण है। उदाहरणत: मेरी सुजान भगत, मुक्तिमार्ग, पंच परमेश्वर, शतरंज के खिलाड़ी और महातीर्थ नामक सभी कहानियों में एक-न-एक मनोवैज्ञानिक रहस्य को खोलने की चेष्टा की गई है। यह तो सभी मानते हैं कि आख्यायिका का प्रधान धर्म मनोरञ्जन है पर साहित्यिक मनोरञ्जन वह है जिससे हमारी कोमल और पवित्र भावनाओं को प्रोत्साहन मिले। हममें सत्य, नि:स्वार्थ सेवा, न्याय आदि देवत्व के जो अंश हैं वे जागृत हों।"

यदि उक्त कथन के आधार पर पंच परमेश्वर और 'बड़े घर की बेटी' को देखा जाय तो निश्चय ही दोनों में मानव-स्वभाव का मार्मिक और मनोवैज्ञानिक तथ्य उपस्थित किया गया है। आनन्दी कठोरता की सीमा तक पहुंचकर भी देवर के आंसुओं से द्रवित हो जाती है और पंचपरमेश्वर गिर कर भी सँभल जाते हैं। इनमें वास्तविकता और आदर्शवाद का सुन्दर सम्मिश्रण है। आगे लिखी गई कहानियों में भी उन्होंने अपने इसी "आदर्शोन्मुख यथार्थवाद" को सुरक्षित रखा।

प्रेमचन्द जी ने व्यक्तिगत जीवन के अनेक अङ्गों को ही अपनी कहानियों में चित्रित नहीं किया अपितु समाज और राष्ट्र को, उसकी अनेक समस्याओं को भी अपनी कहानियों का आधार बनाया; उनमें कला के अनेकों प्रयोग और प्राच्य तथा पाश्चात्य शैली का अपूर्व सम्मिश्रण मिलता है। भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता प्रधान रही है पर आधुनिक विज्ञान

ने भौतिकता को प्रधानता दे दी। प्रेमचन्द जी ने मध्यमार्ग का अनुसरण किया है। इन्होंने कुछ ऐतिहासिक कहानियां भी लिखीं पर प्रसाद जी की तरह न तो ये सांस्कृतिक तत्वों के सूक्ष्मतम रूप का निदर्शन ही कर सके न उस युग का स्पष्ट चित्र ही सामने रख सके। इनकी अधिकांश ऐतिहासिक कहानियां राजपूती काल से सम्बन्ध रखती हैं जिसमें देश प्रेम, शरणागत रक्षा और वीरता के नाम पर आत्म-बलिदान के उत्कृष्टतम उदाहरण मिल सकते थे। "शतरंज के खिलाड़ी" में विलासितापूर्ण जीवन और पतन की पराकाष्ठा दिखाई गई है। मिर्जा और सैयद, नवाब के बन्दी होने पर भी उत्तेजित नहीं होते पर शतरञ्ज के बादशाह पर मर मिटते हैं। उनमें व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था पर सांस्कृतिक दृष्टि से उसका पतन हो चुका था। उत्कृष्ट श्रेणी का प्रेम और स्थानीय विशेषता का चित्रण भी उनकी कहानियों की मुख्य विशेषताएँ हैं। मध्यवर्गीय जनता का चित्रण और घरेलू जीवन में मनोविज्ञान की स्थापना सर्वप्रथम इन्होंने ही की। 'भारत गांवों में है' वहां के निवासी किसान, जमींदार, महाजन, पुलिस और पटवारी आदि सबको उन्होंने अपनी कहानी का पात्र बनाया। देहाती जीवन की कठिनाइयों का चित्र उपस्थित करते हुये भी उसमें एक रसता का सृजन करते हैं और आदर्शवादी दृष्टिकोण के कारण गावों के प्रति आकर्षण को सुरक्षित रख लेते हैं। उन्होंने सामयिक समस्याओं में मनोवैज्ञानिक तथ्यों का अन्वेषण किया है और उन्हीं के द्वारा मानवता के विराट रूप को प्रस्तुत किया है। सुख-दुःख, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम और घृणा आदि तो मानव के चिरंतन भाव हैं, प्रेमचन्द जी ने अपनी

कहानियों में इन्हें अन्तर्भूत कर उन्हें विश्वजनीन बना दिया है।

प्रेमचन्द जी के पात्र साधारण जीवन में प्रतिदिन उपलब्ध हो सकते हैं। अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण के कारण वे प्रधान पात्र को गिरने नहीं देते। भरसक तो वे अपने पात्रों के जीवन के उसी अंश को चित्रित करते हैं जहां गिरने की संभावना होते हुए भी वे नहीं गिरते। भारतीय परम्परा के अनुसार अन्त सुखमय ही होना चाहिये; प्रेमचन्द जी ने इसका पालन किया है पर अपने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में वे इसको न निभा सके; सम्भवतः वे और भी, पूर्ण यथार्थवादी बन गये थे। इनकी कहानियों के पात्र धीरे-धीरे विकसित होते हैं और अन्त में उनके चरित्र की विशेषतायें पूर्णरूप में झलक उठती हैं। संगठन और वातावरण को प्रस्तुत करने में प्रेमचन्द जी नहीं हिचकते पर इसके कारण कभी कभी कहानी लम्बी भी हो जाती है। प्रसाद जी की तरह न तो इनकी कहानियों में न तो भावुकता अधिक है न कल्पना की उड़ान. रवीन्द्र की तरह दर्शनशास्त्र के सूक्ष्मतम सिद्धान्तों का इनमें समावेश भी नहीं है। रोमांस वर्णन में जीवन की सच्चाई ही झलकती है।

सरल और मुहावरेदार तथा प्रभावशाली भाषा ने इनकी कहानियों को लोकप्रियता दी है। शैली आकर्षक और आलंकारिक है। जगह-जगह शिष्टहास्य का समावेश भी किया गया है; विकास क्रम के अनुसार इनकी कहानियों को निम्नलिखित वर्गों में बाँट सकते हैं—

(१) प्रारम्भिक कहानियों में आकस्मिक घटनाओं की

प्रधानता है, विचार और चरित्र-चित्रण गौण है। स्वर्ग की देवी आदि इसी प्रकार की कहानियां हैं।

(२) द्वितीय काल में चरित्र चित्रण को विशेपता प्राप्त हो गई है किन्तु चरित्रों का विकास आदर्शोन्मुख ही रहा। इन कहानियों में सुधारात्मक भावुकता का समावेश है। हृदय के अन्ततम प्रदेश में छिपी सद्वृत्तियों को जगाना और उनके द्वारा एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करना ही इन कहानियों का प्राण रहा। 'दीवाला' 'लीला' और 'शान्ति' आदि में ये गुण उपलब्ध होते हैं। क्रमशः प्रेमचन्द जी की कला चरित्र-चित्रण की अपेक्षा मनोविश्लेपण की ओर झुकती गई। मां, घर जमाई, इद्गाह आदि में मनोविश्लेपण पर भी पूरा ध्यान दिया गया है। इनकी कुछ ऐसी कहानियां भी हैं जिनमें प्रभावोत्पादन करने वाली शैली परिलक्षित होती है। 'धिक्कार' 'कायर' आदि कहानियां ऐसो ही हैं।

(३) जिस प्रकार प्रेमचन्द जी उपन्यास के क्षेत्र में 'गोदान' लिखकर यथार्थवाद की चरमसीमा तक पहुंच गये उसी प्रकार अपनी अन्तिम कहानियों में भी वे यथार्थवादी रूप में ही सामने आये। इनका अन्तिम कहानी संग्रह "कफन और अन्य कहानियाँ" इसी रूप को प्रकट करता है।

इस प्रकार प्रेमचन्द जी द्वारा घटना प्रधान, भावात्मक, चरित्रप्रधान और मनोविश्लेषणात्मक सभी प्रकार की कहानियाँ लिखी गईं। उनकी कला क्रमशः प्रौढ़ होती गई और आधुनिक कहानीकला के प्रमुख तत्व मनोविश्लेषण तक पहुंच गई। जन-जीवन के बहुरंगी चित्र उनमें अंकित हैं। विभिन्न प्रकार के

पात्र विभिन्न मनोभावों के साथ उनके कहानी-जगत में विद्यमान हैं। प्रेमचन्द जी में भारतीय संस्कृति के प्रति झुकाव है, और ग्राम्यजीवन के प्रति ममता, और साथ ही है जन-जीवन के गूढ़तम अन्तःप्रदेश में घुसकर उसके रहस्यों को अभिव्यक्त कर देने की अदम्य कामना। विश्व की कितनी ही समृद्ध भाषाओं में इनकी रचनाओं का अनुवाद हो चुका है। हिन्दी साहित्य को नया-जीवन, नयी दिशा, नयी शैली और नये कलात्मक भाव देकर वे अन्तर्हित हो गये। उनकी कला जीवन के लिये थी और उसका एक महान लक्ष्य था। वे प्रगतिशील थे, राष्ट्र की गति के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ते गये उन्होंने प्रगतिशील शक्तियों को बल दिया और जीवन के अन्तिम समय मे तो वे गाँधीवादी दृष्टिकोण छोड़ चुके थे। अपनी कलाकार की दूरदर्शी दृष्टि से उन्होंने गांधीवाद की असफलता को बहुत पहले ही देख लिया था। आलोचकों की दृष्टि में उन पर रूसी कथाकारों का बहुत प्रभाव है। दृष्टि-कोण में समता होते हुये भी उनकी कला का रूप और विकास सर्वथा भारतीय ही रहा।

श्री पदुमलाल पुन्नालाल बक्षी:—

हिन्दी के वृद्ध महारथी साहित्य सेवियों में श्री बक्षी जी का स्थान अन्यतम है। कवि, कहानीलेखक और समालोचक इन तीनों ही रूपों में आपके दर्शन होते हैं। संवत् १९७२ के पूर्व ही आपकी कवितायें और आख्यायिकायें सरस्वती में प्रकाशित होने लगी थीं। आपकी शैली में पाठकों को अपना बना लेने की अद्भुत क्षमता है; इसके मुख्यतः दो कारण हैं

प्रथम तो यह कि आप कहानियों में उत्तम पुरुषात्मक शैली द्वारा स्वयं प्रमुख पात्र के रूप में उपस्थित होकर आपबीती सुनाते हैं इसलिये पाठक भी अपनत्व के अप्रत्यक्ष प्रभाव से अभिभूत हो जाता है—द्वितीय कारण, सामान्य घरेलू जीवन से उपयुक्त घटनाओं का चुनाव करना है।

'झलमला' शीर्षक इनकी कहानी कातिक संवत् १९७२ की सरस्वती में प्रकाशित हुई है। इसका कथानक अत्यन्त ही छोटा है—

'मैं' की भाभी किसी पंडित जी की वहू की सखी होकर आई हैं। इसके उपलक्ष में 'मैं' एक मोमबत्ती के टुकड़े को जलाकर उन्हें आलोक दिखाता है और एक गिन्नी इनाम में प्राप्त करता है। ८ वर्ष बाद वह बी०ए०, एल०एल०बी० होकर जब वापस लौटता है तब उसकी भाभी स्वर्ग चली गई थीं; किन्तु उनकी उसी सखी द्वारा उसे यह ज्ञात होता है कि वह मोमबत्ती का टुकड़ा एक रेशमी रूमाल में बँधा अभी तक उनके बक्स में पड़ा है। 'मैं' उसे पुनः लेकर एक वेदना और टीस के साथ जलाकर आलोकित कर देता है।"

यह कहानी मानव-मन को चिरप्रभावित करने वाले प्रेम एवं उसके प्रमुख संचारी भाव स्मृति पर आश्रित है। सरल भाषा में लिखी गई यह छोटी सी कहानी प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को संवेदना से भर देने वाली है। संवाद स्वाभाविक और बोलचाल की शैली में ही है। तब से लेकर आधुनिक काल में लिखी गई 'चक्करदार चोरी' जैसी कहानियों में भी उनकी वही शैली चली आई है। अपनी लेखन शैली में निजी

विशेषता और व्यक्तित्व की जैसी प्रतिष्ठा वे कर सके हैं वैसी बहुत कम लेखक कर पाये हैं।

श्री रायकृष्णदास:—

हिन्दी साहित्य-जगत में आप कहानीकार की अपेक्षा एक गद्य-काव्य-लेखक के रूप में अधिक विख्यात हैं। आपकी 'साधना' से शायद ही कोई अपरिचित हो। संवत १९७४ से आख्यायिका-क्षेत्र में इन्होंने प्रवेश किया। कवि और भावुक होने के कारण संस्कृतमयी भाषा और भावपूर्ण अभिव्यंजना इनकी कहानियों की विशेषतायें हैं। इनकी शैली जयशंकर प्रसाद जी से मिलती-जुलती है। इनकी कहानियों में जहाँ मानव-चरित्र और भावना का विश्लेषण किया गया है वहां प्रसाद जी की तरह ही इतिहास के चिरन्तन सत्यों की व्यंजना भी हुई है। कवित्वपूर्ण वातावरण की सृष्टि और नाटकीय तथा आदर्शवादी परिस्थितियों का सृजन, प्रसाद जी की तरह ये नहीं कर पाये हैं किन्तु फिर भी भावुकता तथा दार्शनिकता के आधार पर निर्मित आप की प्रत्येक कृति आप के व्यक्तित्व को ज्योतिर्मय बना देती है। 'अन्तःपुर का आरम्भ' और 'प्रसन्नता की प्राप्ति' तथा 'माँ की आत्मा' आदि इनकी उत्कृष्ट श्रेणी की कहानियां हैं। अतीत और वर्तमान के गृह-जीवन की एक अद्‌भुत झलक इन कहानियों में उपलब्ध होती है। 'अनाख्या', 'सुधांशु' और 'आँखों की थाह' के नाम से इनके तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन':—

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने सं० १९७५ से कहानी-क्षेत्र

में प्रवेश किया। वे एक राष्ट्रीय कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप में ही जन सम्पर्क में आये। जिस प्रकार इनकी कवितायें राष्ट्रीय भावना से ओत-पोत हैं उसी प्रकार इनकी कहानियां भी।

संवत् १९७६ में जिन कहानीलेखकों ने इस क्षेत्र में पदार्पण किया उनमें श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' और श्री गोविन्द-वल्लभ पन्त के नाम उल्लेखनीय हैं। ये दोनों ही कलाकार प्रसाद जी की परम्परा में ही सम्मिलित किये जा सकते हैं।

श्री चण्डीप्रसाद जी 'हृदयेश':—

चमत्कारपूर्ण भाषा में कवित्वपूर्ण वातावरण का सृजन, कल्पना की ऊँची उड़ान और प्रकृति-चित्रण तथा सौन्दर्य बोध की तीव्रता इनकी कहानियों की विशेषतायें हैं। ये विशेषतायें कहानी-कला की भव्यता को निखारने की अपेक्षा उस पर एक झीना आवरण डाल देती हैं। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में इनकी कहानियाँ—

"परिस्थितियों के विशद एवं मार्मिक वर्णनों और व्याख्यानों के साथ मंद मधुर गति से चल कर किसी एक मार्मिक परिस्थिति में पर्यवसित होने वाली" हैं।

आलंकारिक भाषा के प्रयोग के कारण इनके वर्णन कहीं-कहीं कृत्रिम और अरोचक हो गये हैं। 'शान्ति निकेतन' शीर्षक कहानी में उनकी इस शैली का मूर्त रूप दिखाई पड़ता है।

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त:—

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने भी "जूठा आम" शीर्षक अपनी कहानी में कवित्वपूर्ण वातावरण शैली को ही अपनाया

है। इनकी यह कहानी सुदर्शन जी के "प्रेम-तरु" से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। क्योंकि इसमें भी नायक एक आम की गुठली से एक वृक्ष तैयार करता है और उसका अपनी प्रियतमा की भांति आदर करता है। इसी गुठली को चौके में गिरने से बचाने के लिये उसकी प्रियतमा फिसलकर मर जाती है। अपने 'मिलन मुहूर्त' आदि कहानियों में भी उन्होंने प्रसाद जी की शैली को ही अपनाया है ।

प्राचीन कहानियों में ग्राह्य आकस्मिक संयोगों के साथ प्रेमचन्द जी की कहानियों की स्पष्ट छाप इनकी कृतियों पर दिखाई पड़ती है। प्रसाद जी की शैली का अनुकरण करते हुये भी 'हृदयेश' जी की तरह ये भाषा के वाह्य आडम्बरों और कृत्रिमता से प्रभावित नहीं हुये।

श्री सुदर्शन:—

कहानी क्षेत्र में प्रेमचन्द जी के बाद यदि सबसे अधिक लोकप्रियता किसी व्यक्ति को प्राप्त हुई तो वे सुदर्शन जी ही हैं। संवत् १६७७ में इनकी पहली कहानी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई ।

प्रेमचन्द जी की ही तरह सुदर्शन जी ने भी मानव-जीवन के साधारण पहलुओं की ओर अधिक ध्यान दिया। मानव के अन्तः में प्रविष्ट होकर उसकी चेतना के यथार्थ स्वरूप का दर्शन कर उसकी कलात्मक अभिव्यंजना करने में ये पूर्ण सफल हुये। जिसे अन्य कलाकार सामान्य कहकर छोड़ देते हैं उसे सुदर्शन जी की कला-तूलिका ने सौन्दर्य की अलौकिकता से भव्य और मोहक बनाकर चित्रित किया है।

कल्पना की ऊंची उड़ान भर कर मोहक वातावरण के अवतारण की अपेक्षा, तथ्यों को सामान्य भाव-भूमि पर कला की दिव्यता से सजा देने की ओर ही इनका ध्यान रहा है। यही कारण है कि प्रेमचन्द जी की कला को जीवित रखने में ये अधिक सफल हुए हैं। उन्हीं की तरह सुदर्शन जी ने भी कहानी क्षेत्र में भाव, भाषा और शैली में विभिन्न प्रयोगों द्वारा अपनी कला को विकास और प्रगति के मार्ग पर गतिशील रखा है।

सुदर्शन जी की कहानियों को कथावस्तु के आधार पर तीन भागों में बांटा जा सकता है:—

(१) किसी एक ही विशिष्ट भावना पर आधारित कहानियाँ; उदाहरण के लिये इनकी "हार की जीत" नामक कहानी ली जा सकती है। यह सम्पूर्ण कहानी केवल एक इसी भाव पर आधारित है कि यदि कोई गरीब बनकर दूसरों से सहायता प्राप्त करे और उलटे उसे धोखा दे तो "वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे।" बाबा भारती की सहायता करने वाली केवल एक उदार भावना को प्रकाश में लाने के लिए ही लेखक ने इस कथानक की सृष्टि की है।

(२) मानव जीवन और इतिहास के किसी चिरंतन सत्य को व्यंजित करने वाली कहानियाँ। इनकी "कमल की बेटी" "संसार की सब से बड़ी कहानी" और "एथेन्स का सत्यार्थी" आदि कहानियाँ इसी प्रकार की हैं। 'संसार की सबसे बड़ी कहानी' आकार प्रकार में सबसे छोटी है, किन्तु उसमें प्रकृति-पुरुष के जिस चिरंतन एवं अमर सत्य की व्यंजना हुई है, वह सचमुच ही उसे एक महान कहानी बना देती है। 'धर्म की वेदी

पर' में भी सोलह सौ वर्ष पूर्व के रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्टों के संघर्ष का एक ऐतिहासिक सत्य चित्रित किया गया है।

(३) इनकी कहानियों का तीसरा विषय दैनिक जीवन की छोटी छोटी समस्याओं में से ली गई ये चुनी हुई घटनाएँ हैं जो जीवन और जगत् से सम्बन्ध रखती हैं। ये घटनाएँ पाठकों के लिए अपरिचित नहीं होतीं परन्तु कलात्मक रूप में वे हृदय को स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता रखती हैं। सुदर्शन जी की इस प्रकार की कहानियाँ ही उन्हें यथार्थवादी कलाकारों की श्रेणी में एक महत्वपूर्ण पद प्रदान करती हैं। ऐसी कहानियों में सामान्य रूप से जीवन में आने वाले सामान्य पात्रों को असामान्य बनाकर प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए इनकी 'मास्टर आत्माराम' शीर्षक कहानी ली जा सकती है। इसमें मास्टर आत्माराम का चरित्र बाह्यरूप में सामान्य तथा अन्तःरूप में असामान्य दिखलाया गया है।

जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में समान भाव से सहृदयता और स्नेह का संबल लिये सूरदास अपनी अंधी आँखों से जीवन के ऐसे यथार्थ और नग्न सत्य को देखता है जिससे पागल हो अन्धेरी रात में घनघोर वर्षा के समय गिरता-पड़ता, ठोकरें खाता उस व्यक्ति के घर से भागता है, 'जिसे उसने लाड़-प्यार से पाल पोस कर बड़ा किया था, जिसके लिये रात-दिन एक कर दिया था, जिसको पढ़ाने के लिए उसने अपना आत्म-गौरव भी बेच दिया था' क्योंकि वही लड़का उसकी मौत के लिये मिन्नतें मान रहा था। इनकी इस 'सूरदास' शीर्षक

कहानी में कतिपय स्थलों पर मनोभावों का विश्लेषण भी अत्यन्त ही सुन्दर हुआ है।

वस्तु विन्यास के अतिरिक्त सुदर्शन जी की कहानियों में शैली की विभिन्नता भी दृष्टिगोचर होती है। कलात्मक ढङ्ग की कहानियाँ लिखने में आप सिद्धहस्त हैं। भाषा स्वाभाविक तथा ओजस्विनी है और उर्दू से हिन्दी में आने के कारण उर्दू के प्रचलित शब्दों के अतिरिक्त फारसी के कतिपय शब्दों का बीच बीच में आ जाना स्वाभाविक ही है। शैली आकर्षक और मार्मिक है। संवादों में सरलता और सामान्य बात-चीत का ढङ्ग अपनाया गया है। वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त पत्रात्मक शैली में लिखी गई कहानी 'प्रताप के पत्र' हैं। कहानी के विभिन्न पात्रों के मुख से कहानी के विभिन्न घटनाओं का वर्णन कराकर उसको पूर्ण करने की एक नवीन शैली भी इन्होंने दी है। 'कवि की स्त्री' तथा 'जीवन और मृत्यु' शीर्षक कहानियाँ इसी ढंग से लिखी गई हैं।

सुदर्शन जी सामाजिक प्रगति के साथ चलने वाले कलाकार हैं। जहां प्रेमचन्द जी की तरह अपनी विविध कहानियों में अमीरी और गरीबी का एक साथ चित्रण कर, इस पूँजीवादी युग के तथ्यों को इन्होंने स्पष्ट किया है, वहाँ उनसे भी आगे बढ़कर उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था के विकृत रूप को भी उपस्थित किया है। एक ही व्यक्ति किस प्रकार भीतर और बाहर दोनों ओर से ही गरीबी और अमीरी में अपना रूप बदल लेता है; 'हेर फ़ेर' में इसे ही मूर्त किया गया है। एक मजदूर स्वयं डण्डे खाता और अमीर बनकर स्वयं मजदूरों पर डण्डों की वर्षा करता है। गरीबी में जो मजदूर कहता है—

"हे प्रभो ! हमारे पास न धन-दौलत है, न महल अटारियाँ, न नौकर-चाकर। फिर तूने हमें क्यों पैदा किया ? क्या सिर्फ इसलिए कि अमीरों के नौकर आयें और हमें उठाकर सड़क के किनारे फेंक दें। आखिर दुनिया को हमारी क्या जरूरत है ?"

यदि वही व्यक्ति छल, फरेब और धोखे से अमीर बन कर कहे—'हे प्रभो ! इन अभागे मजदूरों के पास न धन-दौलत है, न महल अटारियां, न नौकर-चाकर; फिर तूने इन्हें क्यों पैदा किया है ? क्या सिर्फ इसलिए कि यह हम लोगों के रास्ते में आ खड़े हों और हमारा समय नष्ट करें। आखिर दुनिया को इनकी क्या जरूरत है ?" तो इसे पूँजीवादी व्यवस्था का ही दोष कहा जाएगा जो मानव मन को मानवता से च्युत और विकृत कर देता है।

सुदर्शन जी के सात कहानी संग्रह छप चुके हैं। इन कहानियों ने सुदर्शन जी को तो यशस्वी बनाया ही है, साथ ही हिन्दी-साहित्य का भी सिर ऊंचा किया है।

श्री बेचन शर्मा 'उग्र':—

इनकी कहानियों में जीवन है, ताजगी है और है साधारण से साधारण तथा हेय पात्रों के चरित्र को कलाकार की लेखनी द्वारा सजे-धजे सुसज्जित आवरण में प्रस्तुत करने की क्षमता। भाषा मादक है, उपमाएँ नयी और अल्हड़पन से ओत-प्रोत। लाक्षणिकता के प्रयोग ने तो उसमें और भी चार चाँद लगा दिए हैं। इनकी 'उसकी मां' शीर्षक कहानी से भाषा के स्वरूप का एक उदाहरण देखिए:—

"माँ ! तू ठीक भारत माता सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका हिमालय उजला है, तेरे केश। हाँ, मैं नकशे से साबित करता हूँ—तू भारत माता है। सर तेरा हिमालय, माथे की दोनों गहरी-बड़ी रेखाएँ गंगा और यमुना। यह नाक विन्ध्याचल, दाढ़ी कन्या-कुमारी तथा छोटी बड़ी झुर्रियाँ-रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। जरा पास आ मेरे। तेरे केशों को पीछे से आगे—बाएँ कन्धे पर लहरा दूँ। यह बर्मा बन जायगा। बिना उसके भारत-माता का शृङ्गार शुद्ध न होगा।"

उग्र जी ने अपनी कहानियों में राष्ट्रीयता को प्रधानता दी है। 'उसकी माँ' और 'देशभक्त' शीर्षक कहानियाँ देश-भक्ति और राष्ट्रीयता के उत्कृष्टतक रूप को सामने लाती है। इन कहानियों में जहाँ एक अविरल प्रवाह दिखाई पड़ता है, वहाँ उपदेशात्मक प्रवृत्ति भी झलक पड़ी है। इनकी सभी कहानियाँ प्रायः वर्णनात्मक हैं। आत्मा-चरित-प्रणाली में लिखी गई कहानी 'उसकी माँ' है। कुछ कहानियाँ इन्होंने प्राकृतवादी ढंग की लिखी है जिन में कुरुचिपूर्ण वर्णनों को भाषा के आवरण से ढक-कर उपस्थित किया है। इन्होंने पौराणिक वातावरण में स्त्री और पुरुष तथा उनकी विभिन्न प्रकृतियों और दृष्टिकोणों को भी अपनी कहानी में अंकित किया है। इनकी पहली कहानी संवत् १९७७ में 'आज' में छपी थी। सेक्स सम्बन्धी इनके नये विचारों के कारण इनकी रचनाओं की काफी आलोचना भी हुई क्योंकि आलोचकों की दृष्टि में उग्र जी की कहानियों के अन्तराल में कामुता की, आवेग और उद्वेग की एक छिपी धारा दीख रही थी।

स्वर्गीय श्री कृष्णकान्त मालवीय ने संवत् १९७९ के लगभग 'रजिया की समस्या' शीर्षक एक कहानी लिखी जो इसी वर्ष 'अभ्युदय' में प्रकाशित हुई। इसकी भाषा उर्दू मिश्रित है और सेक्स समस्या पर पूर्णतः आश्रित यह पहली कहानी कही जा सकती है।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी:—

इनकी पहली कहानी संवत् १९८१ की 'माधुरी' में छपी। अबतक इन्होंने लगभग तीन सौ कहानियां लिखी हैं। इनकी भाषा अत्यन्त ही सरल और सुथरी हुई है। इनकी कहानियों में प्रायः आजकल के मध्यवर्गीय समाज के ह्रासोन्मुख जीवन के चित्र खींचे गये है। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में इनकी कहानियाँ—

"सादे ढंग से केवल कुछ अत्यन्त व्यंजक घटनाएँ और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्र गति से किसी एक गंभीर संवेदना या मनोभाव में पर्यवसित होने वाली" हैं।

आज के इस वर्ग-संघर्ष के युग में एक दूसरे के प्रति सहानुभूति का अभाव, संशय और अविश्वास की भावना तथा हृदयहीनता का नग्न रूप प्रायः सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होता है। इनकी 'निंदिया लागी', इसी दुरवस्था का चित्रण है। 'महा-पुरुष' इनकी व्यंग्यप्रधान रचना है। मानव की सर्वजन-व्याप्त भावना और वे-ना का मर्मस्पर्शी चित्रण तो इन्होंने किया ही है; कहीं कहीं दार्शनिकता का पुट देकर उसे बोझिल भी बना दिया है।

'खाली बोतल' नामक इनकी कहानी संग्रह में संगृहीत कहानियों को उसकी अपनी परिभाषा से अलग निकाल कर

आकर्षक रूप में उपस्थित करने का प्रयास किया गया है, क्योंकि उनमें एक अवस्था, एक घटना, एक व्यक्ति या उसकी विशिष्ट प्रवृत्ति अथवा भावना का इनमें चित्रणमात्र नहीं है। 'खाली-बोतल' शीर्षक कहानी में बोतल के प्रतीक को कौशल के साथ निभाया गया है। 'पेंसिल स्केच' में परिस्थितियों की मार्मिकता सीधे ढंग से हृदयंगम कराई गई है।

'पुष्करिणी' संग्रह की कहानियों में जहां प्रेम, सहानुभूति और करुण की धारा वही, है वहां देश के निम्न एंव दरिद्र जीवन पर भी संवेदनापूर्ण दृष्टिपात किया गया है। प्रथम प्रकार की कहानियों में भावुकता की अतिशयता हो गई है, 'स्वप्नमयी' 'गृहस्वामिनी' आदि कहानियां इसके उदाहरण हैं। निम्न वर्ग को चित्रित करने वाली 'चोर' और 'शबनम' शीर्षक कहानियां सुन्दर हैं।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से 'स्पर्धा', तथा जीवन की गति-विधि को सर्वाङ्गपूर्ण रूप में उपस्थित करने वाली 'कला कि दाग़' कहानी सर्वोच्च है। 'मिठाई वाला' शीर्षक इनकी कहानी द्वारा साधारण परिस्थिति में असाधारणता की उत्पत्ति दिखाई गई है, क्योंकि सन्तति हीन होने पर भी 'मिठाई वाला' बन जाना असाधारण भावुकता का ही प्रतीक है। इनकी शैली का अनुकरण बाद के कई कहानी लेखकों ने किया है।

श्री विनोदशंकर व्यास—

इनकी पहली कहानी संवत् १९८२ की माधुरी में प्रकाशित हुई। प्रसाद जी की भावुकता का उत्तराधिकार इन्होंने ही प्राप्त किया है। इनकी छोटी-छोटी भावनात्मक कहानियों में करुणा

की अजस्रधारा प्रवाहित हुई है। इनका दृष्टिकोण निराशावादी रहा है, अतः अधिकांश कहानियों में असफल-प्रेम-जीवन का चित्रण है। शैली सुन्दर, सरल एवं हृदयग्राहिणी है। छोटे-छोटे वाक्यों में मार्मिक भाव व्यंजित करने में इन्हें पूरी सफलता मिली है।

इनकी बाद की कहानियों पर यथार्थवादी प्रभाव परिलक्षित होता है और ये अपनी उसी करुण भावना के साथ दीन और दुखी समाज के मर्मभेदी वर्णन की ओर झुक गये। 'विधाता' इसी ढंग की कहानी है जिसमें आर्थिक मार से घायल विजय का चरित्र अत्यन्त ही उत्कृष्ट बन पड़ा है। वह बड़े से बड़े आघात को इसलिये सह लेता है—"क्योंकि संसार में एक और बड़ी शक्ति है, जो इन सब शासन करने वाली चीजों से कहीं ऊंची है, जिसके सहारे बैठा हुआ मनुष्य आंख फाड़ कर अपने भाग्य की रेखा को देखा करता है।"

सं० १९९९ के पूर्व लिखी गई इनकी कहानियों का संग्रह "पचास कहानियां" के नाम से छप चुका है।

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जी ने भी सं० १९८० में कहानी क्षेत्र की ओर दृष्टिपात किया। ये छायावादी काव्य-धारा के तीन महाकवियों में गिने जाते हैं और कविरूप में ही अधिक प्रख्यात भी हैं। इनकी प्रारम्भिक कहानियां 'मतवाला' में प्रकाशित हुई थीं। इनकी गद्यशैली सर्वथा अनूठी है। तर्कपूर्ण पर गतिशील, संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ उर्दू के आम फ़हम शब्दों को लिये इनकी भाषा समाज पर तीखे व्यंग बाण छोड़ती कहानी के लक्ष्य की सिद्धि करती है। लाक्षणिक प्रयोगों की भी इनमें

कमी नहीं होती ; पर कहानीकार की अपेक्षा कविरूप में ही इन्हें अधिक सफलता प्राप्त हुई। 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' शीर्षक कहानी में इनकी यह शैली देखी जा सकती है। इस काल में उक्त कहानीकारों के अतिरिक्त भी अन्य लेखकों की की कहानियाँ प्रकाशित हुईं। श्रीमती शिवरानी देवी ने भी अपने स्वनामधन्य पति श्री प्रेमचन्द जी की शैली का अनुकरण करते हुए इस अन्तिम काल में कुछ कहानियाँ लिखीं। दीन; दुःखियों और कृषकवर्ग के प्रति वही सहानुभूति, न्याय के लिये संघर्षशीलता, सामाजिक अत्याचारों के प्रति घृणा आदि इनकी कहानियों में भी झलकती हैं, परन्तु ये भारतीय आदर्शों और संस्कृति के प्रति अधिक जागरुक और सतर्क हैं। 'क्षमा' आदि कहानियां इसके उदाहरण हैं।

श्री वाचस्पति पाठक ने सं० १९८४ से कहानी क्षेत्र में प्रवेश किया। अपनी थोड़ी सी ही भावात्मक कहानियों के कारण इन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली है। अभाव से पीड़ित व्यक्तियों के मनोवेगों और आवेगों के वर्णन में इन्होंने अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। 'सूरदास' हो या 'कागज की टोपी', प्रत्येक कहानी पाठकों के हृदय में एक टीस, कसक और वेदना उत्पन्न कर जाती है ; जैसे मानव-हृदय की संवेदनशीलता को जगा देना ही उसका लक्ष्य हो। बिना घटनाओं का जाल बिछाये, बिना रहस्य की सृष्टि करने के लिये आतुरता दिखाये इनकी कहानियाँ अपने लक्ष्य की सिद्धि कर लेती हैं। प्रसाद जी की भावुकता और प्रेमचन्द जी की यथार्थता को अपने प्याले में ढालने का स्तुत्य प्रयास इन्होंने किया है। पाठक जी के बाद ही कहानी का द्वितीय काल आरम्भ हो जाता है।

प्रथम उत्थानकाल का सिंहावलोकन—

संवत् १९६८ से १९८४ तक के इन सोलह वर्षों में कहानीकला, सोलहों श्रृङ्गारों से सज्जित षोडशी की भांति जीवन की एक दिशा की ओर चलने के लिये प्रस्तुत हो गई। पहले यह भाव-जगत् में ही विचरण करती रही, कल्पना के सुनहले सपने देखती रही, यथार्थ से थोड़ा-बहुत परिचय हुआ भी तो भावना के क्षेत्र में ही। भाव-जगत् में देखा गया यथार्थ का यह चित्र कभी कोमल और मृदु, कभी कठोर और भयानक बनकर सामने आया, पर व्यावहारिकता की ठोस-भूमि पर उसके पांव नहीं पड़े थे। प्रथम उत्थान के इस अन्तिम समय से ही कहानी इस मार्ग पर बढ़ने के लिये दृढ़तापूर्वक अग्रसर हुई।

प्रथम उत्थान के ये सोलह वर्ष भारतीय जीवन में महान् उथल-पुथल मचाने वाले हुये हैं। संवत् १९६६ में ब्रिटिश-सरकार ने शासन सुधारों की घोषणा की थी; इसके ५ वर्ष बाद ही प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ। संवत् १९७६ में प्रान्तीय स्वराज्य की नींव पड़ी और दो वर्ष के अनन्तर सारे देश में असहयोग आन्दोलन की धूम मच गई। इन घटनाओं ने सम्पूर्ण देश के वातावरण को एक नई इच्छा और प्रगति की आकांक्षा से भर दिया।

सामाजिक सुधारों द्वारा समाज को स्वस्थ एवं पुष्ट बनाकर आगे बढ़ाने के प्रयास होने लगे। राजनीति में सबल होने के लिये इसे प्रथम सोपान समझा गया। बाल-विवाह का निरोध, विधवा विवाह का समर्थन, अछूतों के उद्धार का प्रचार,

जाति-पांति के भेदभाव को मिटाकर सबको समान समझने की भावना आदि का प्रचार आर्यसमाज के द्वारा तो हो ही रहा था; इन कार्यों को राजनीतिक क्षेत्र में भी अपनाकर उन्हें राष्ट्रीय कार्यों का प्रतीक बना दिया गया। इन रचनात्मक कार्यों को पूरा करने का प्रयास करने वालों के हाथ में ही देश का नेतृत्व आ गया।

महात्मा गाँधी ने शिक्षित व्यक्तियों को भारत के सात लाख गांवों की ओर देखने की प्रेरणा दी और संवत् १९७८ के असहयोग आन्दोलन ने तो सचमुच ही गांवों की महत्ता प्रतिष्ठित कर दी।

साहित्य समाज के वातावरण से अछूता नहीं रह सकता; वह इसके लिये बाध्य भी है कि जन जीवन के अधिक से अधिक समीप रहे। हिन्दीसाहित्य भी उक्त वातावरण से प्रभावित हुआ और उसने जन-भावना को वाणी दी। कविता के क्षेत्र में यह रूप भले ही स्पष्ट न हुआ हो पर उपन्यास और कहानी आदि गद्य साहित्य में उसे पूर्ण अभिव्यक्ति मिली। प्रसाद जी की प्रथम कहानी 'ग्राम' है जो अपने नाम से ही अपने विषय की ओर संकेत कर देती है। पं० ज्वालादत्त शर्मा की कहानियों में अधिकांश, समाजसुधार से सम्बन्ध रखती हैं।

श्री गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' प्रथम विश्व युद्ध की घटनाओं को ही आधार बनाकर लिखी गई है।

श्री प्रेमचन्द जी की कहानियों में ग्राम्य जीवन के ही अधिकांश चित्र हैं। एक लम्बे समय तक इन्होंने गाँधी जी की विचारधारा को अपनी रचनाओं में कलात्मक रूप दिया।

गांधी जी के अतिरिक्त भारतीय हृदय की धड़कन को स्पष्ट रूप से सुनने वाले ये ही थे।

आधुनिक कहानियों के इस प्रथम उत्थान काल ने भाव, भाषा और शैली आदि सबमें ही ऐसा परिवर्तन कर दिया कि वह सर्वथा पाश्चात्य देन समझी जाने लगी। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि आत्मा, रूप और शैली सबमें ही प्राचीनता की अस्पष्ट छाप मिलना भी कठिन है; पर यदि हम इस काल के विकास-क्रम पर ध्यान दे तो बाह्य शैली में विदेशीपन भले ही हो आत्मा के अन्तः रूप में ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ है जिससे उसे पहचाना न जा सके।

संस्कृत की पुरातन कथाओं की तरह ही कथानकों में दैवी घटनाओं और संयोगों का सहारा लिया गया, श्री ज्वालादत्त शर्मा, बक्षी एवं कौशिक जी की प्रारम्भिक कहानियाँ इसके उदाहरण हैं। प्रसाद जी की कहानियों में संयोगों के साथ साथ कवि-कल्पना-प्रसूत भाव चित्रों का भी समावेश हुआ है, जिसने भाव मूलक वातावरण-प्रधान-कहानियों को विकसित किया। इनमें मानव-चरित्र के सूक्ष्म अन्तःरहस्यों का भी उद्घाटन हुआ। कवि की तीव्रतम अनुभूतियों का आश्रय ग्रहण करने के कारण ही जहां इनमें अन्तःरहस्यों का उद्घाटन हुआ वहाँ साथ ही इसका कला-पक्ष भी अभिव्यंजना शक्ति से निखर उठा। कहानी और कविता दोनों का ही स्वाद ऐसी कहानियों में उपलब्ध हो जाता है। इसके कथानक, चरित्र और वातावरण सभी भावना या अनुभूतियों से अनुरंजित रहते हैं। अतः ये सुन्दर और प्रभावशाली भी होती हैं।

प्रसाद और प्रेमचन्द जी इस काल के मुख्य उन्नायक हैं। इन दोनों के द्वारा दो प्रकार की शैलियों का परिवर्तन हुआ (१) भाव मूलक (२) यथार्थ। अतीत प्रिय होने के कारण प्रसाद जी ने अपनी भाव मूलक कहानियों के लिये ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक काल की घटनाओं को आधार बनाया। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक कोई भी कथानक की पृष्ठ-भूमि क्यों न हो अपनी विशद कल्पना और अभिव्यंजना शक्ति द्वारा उन्होंने उसे भावप्रधान बना दिया। राजा राधिका रमण-सिंह की प्रारम्भिक, रायकृष्णदास जी की कतिपय और विनोद-शंकर व्यास की अधिकांश कहानियों पर प्रसाद जी की शैली की स्पष्ट छाप है। इन कथाकारों को एक ही श्रेणी में रखा जा सकता है।

इस काल में ऐसे सर्वप्रथम कलाकार श्री प्रेमचन्द जी ही हैं जिन्होंने मनोभावों के विश्लेषण पर ध्यान दिया। विभिन्न परिस्थितियों में उठने वाली भाव तरङ्गों को चित्रित करने का प्रयास, उन्होंने अपनी प्रथम कहानी 'पंच परमेश्वर' से ही किया। निर्णय के समय वे क्या सोचते हैं, इसके चित्रण द्वारा ही इसका श्री गणेश हुआ। 'आत्माराम' में भी इस पर पूरा ध्यान रखा गया है। प्रेमचन्द जी के इस आविष्कार ने चारित्रिक स्पष्टता के लिये मनोविश्लेषण को एक ऐसे साधन का रूप दे दिया जिसका बाद के अन्य कहानीकारों ने पूर्ण उपयोग किया है।

वैसे तो इस काल के आरम्भ से ही अभिजात वर्ग के पात्रों का बहिष्कार-सा हो गया था परन्तु प्रेमचन्द जी ने मानव-

चरित्र के साधारण पहलुओं को ही नहीं चित्रित किया अपितु उन्होंने पात्र भी जन-वर्ग से ही लिया। चमार से लेकर वकील-वैरिस्टर तक सभी उनकी कथाओं के पात्र हैं; पर वे जन-जीवन के निकट हैं अतः कहानी को जनता की वस्तु बनाने का कार्य इन्होंने ही किया है।

निस्सन्देह श्री प्रेमचन्द जी के सामने यूरोपीय, मुख्यतः फ्रांस और रूस के कलाकारों की कहानियां आई थीं। फ्रांससी-लेखकों में गुस्तेव के वास्तविकतावाद और मोपासां के वासना-मय विकृत चित्रों के कलात्मक अंकन उन्हें बड़े सरस लगे। उनकी दृष्टि में 'मोपासाँ और वालजक ने आख्यायिका के आदर्श को भी हाथ से नहीं जाने दिया है।' रूसी कथाकारों में टाल्स-टाय की नैतिकतापूर्ण कहानियों को उन्होंने सराहा है। रूस के विलास प्रिय जीवन को चित्रित करने वाला चेखाव, मनोभावों की दुर्बलताओं को दिखाने वाला डॉस्टावस्की, टीस और दर्द से भरा मार्मिक चित्र उपस्थित करने वाला तुर्गनेव भी उनके लिये अपरिचित नहीं था। वंकिम और रवीन्द्र की कहानियाँ भी उनके दृष्टिपथ में आ चुकी थीं; पर क्या प्रेमचन्द जी ने किसी का भी अन्धानुकरण किया है। उन्होंने भारतीय परम्परा को ही अपनाने पर जोर दिया है—"भारत का प्राचीन-साहित्य आदर्शवाद ही का समर्थक है। हमें भी आदर्श ही की मर्यादा का पालन करना चाहिये। हाँ, यथार्थ का उसमें ऐसा मिश्रण होना चाहिए कि सत्य से दूर न जान पड़े।"

प्रेमचन्द जी की कहानी-कला के विकास के तीन क्रम हो सकते हैं—(१) आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का निश्चय (२)

वर्तमान आख्यायिका में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझना, तथा (३) मैक्सिक गोर्की की भांति कहानी का लक्ष्य, जीवन के यथार्थ, किन्तु मनोवैज्ञानिक सत्य की अभिव्यंजना को मानना। कहना न होगा कि प्रेमचन्द जी की इस अन्तिम प्रवृत्ति ने इस काल के अन्तिम लेखकों एवं आने वाले प्रगतिशील कहानीकारों के लिये एक नये द्वार की ओर संकेत कर दिया।

प्रेमचन्द जी के वर्ग में श्री कौशिक जी अंशतः और सुदर्शन जी पूर्णतः आ सकते हैं।

यथार्थ और भावुकता से समन्वित कहानी लेखकों में श्री चतुरसेन शास्त्री, गुलेरी जी, नवीन, वाचस्पतिपाठक और भगवती प्रसाद बाजपेयी आ सकते हैं।

इस काल में सेक्स समस्या को लेकर कुछ प्राकृतवादी कहानियाँ भी लिखीं गईं। उनमें वासना के विकृत रूपों को कलारेखाओं से सुन्दर बनाया गया है। ये कहानियाँ चरित्र-चित्रण और शैली की दृष्टि से सुन्दर हैं। श्री चतुरसेन शास्त्री, श्री 'उग्र' एवं कृष्णाकान्त मालवीय की कुछ कहानियाँ इसी ढंग की हैं।

कुछ प्रतीकवादी कहानियाँ भी लिखी गईं। इनमें किसी वस्तु को वर्ण्य वस्तु का प्रतीक मानकर पूरी कहानी लिखी जाती है। प्रसाद जी की 'कला', रायकृष्णदास जी की 'कला और कृत्रिमता', उग्र जी की 'भुनगा' तथा भगवती प्रसाद बाजपेयी की 'खाली बोतल' शीर्षक कहानियां इसके उदाहरण हैं।

हास्य रस की थोड़ी कहानियां लिखी गई। विश्वम्भर-नाथ जिज्जा और श्री वास्तव जी के अतिरिक्त मोटे राम को

आलम्बन बनाकर लिखी गई प्रेमचन्द जी की कुछ कहानियां भी हास्यरस की हैं।

हिन्दी साहित्य में कार्य प्रधान, साहसिक या जासूसी कहानियाँ बहुत ही कम हैं। प्रयोग काल में ही श्री गोपालराम गहमरी ने कुछ जासूसी कहानियाँ लिखीं। हिन्दी साहित्य के एक अंग की पूर्ति की दृष्टि से देखा जाय तो आपका कार्य सर्वथा सराहनीय है। उपन्यासों की अपेक्षा, इनकी ऐसी रहस्यपूर्ण, साहसिक और अद्भुत कहानियां थोड़ी हैं। ऐसी कहानियों में, पात्रों के चरित्र या मनोभावों के विश्लेषण की अपेक्षा उनकी विस्मय विमुग्ध कर देने वाली चतुराईयों की ही प्रमुखता होती है। कुछ कहानियां बनारस के उपन्यास बहार आफिस से भी प्रकाशित हुईं।

कहानी लिखने की सामान्य और प्रथम प्रचलित शैली थी, वर्णनात्मक; जिसमें लेखक एक इतिहासकार की भांति तटस्थ होकर पूरी कहानी का वर्णन करता था। इस काल के प्रारम्भ से ही शैली में नाटकीय तत्वों (मुख्यत: कथोपकथन) का समावेश किया जाने लगा। प्रसाद और राजा राधिका रमण सिंह की कहानियों में मुख्यत: इसी शैली का व्यवहार हुआ है।

श्री कौशिक जी ने कथोपकथन को ही मुख्य आधार बनाकर संवादात्मक शैली की नींव डाली।

श्री प्रेमचन्द जी ने यथार्थ वातावरण की उपस्थिति द्वारा इस वर्णनात्मक या ऐतिहासिक शैली का और भी विकास किया।

श्री सुदर्शन जी ने आत्म-चरित-शैली का पूरा उपयोग किया है। इसका विकसित रूप विभिन्न पात्रों द्वारा, स्वयं अपनी अपनी कहानी सुनाकर एक कहानी को पूर्ण बनाने वाली शैली में दिखाई पड़ता है। श्री प्रेमचन्द जी की 'ब्रह्म का स्वांग' और सुदर्शन जी की 'कवि की स्त्री' आदि कहानियां इसके उदाहरण हैं। कहानियों में पत्र शैली का भी सीमित उपयोग किया गया। इस काल में कुछ ऐसे भी कहानी लेखक हुये जिन्होंने अपनी सीमित कहानियों द्वारा ही अच्छा सम्मान प्राप्त कर लिया। इनमें श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' मुख्य हैं। इनकी शैली व्यंग्य प्रधान है; भाषा प्रौढ़ और परिष्कृत। वर्ण्य विषय के अतिरिक्त ये सुन्दर और सुतीक्ष्ण-व्यंग्य, जीवन के अन्य अङ्गों की ओर भी संकेत करते हैं।

श्री इलाचन्द्र जोशी ने भी कुछ कहानियां लिखी हैं— 'दीवाली और होली' के नाम से उनका एक संग्रह भी निकल चुका है। ये कहानियाँ मध्यम श्रेणी की हैं; इनमें न तो रुचि को आकृष्ट करने की क्षमता है न कला की दृष्टि से उत्कृष्टता। आधुनिक जीवन के कुछ चित्र उनमें अवश्य मिलेंगे। श्री बृन्दावनलाल वर्मा ने भी ऐतिहासिक और जीवन की असामान्य घटनाओं को आधार बनाकर कुछ कहानियां लिखी हैं। 'दस के सौ' आदि अच्छी कहानियां हैं।

यह काल कहानी साहित्य का स्वर्णयुग कहा जा सकता है; छोटी-बड़ी सभी प्रकार की कहानियां लिखी गईं। अनेकों कहानी लेखक नई नई शैली, नए नए विचार लेकर आये और उन्होंने इसे बहुमुखी बनाने का प्रयास किया। भाव-भाषा-शैली आदि की अनेकविधता ही इस युग की मुख्य देन है।

——०——

द्वितीय उत्थान

प्रगतिशील कहानी-साहित्य (पूर्वार्ध सं० १९८५ से)—

संवत् १९८५ के प्रारम्भ में ही कुछ नए कलाकारों ने कहानी-क्षेत्र में प्रवेश किया। इनके स्वर में विद्रोह की एक ऐसी गूंज थी जिसने बरबस कहानी को एक नई दिशा की ओर मोड़ दिया। यातायात के साधनों की सुविधा तथा विभिन्न देशों के पारस्परिक राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्धों ने एक देश के भाव, विचार और सांस्कृतिक निष्ठा द्वारा, सम्बन्धित अन्य देशों को भी प्रभावित करना आरम्भ कर दिया। यूरोप और अमेरिका के अधिकांश देश पूँजीवादी (साथ में साम्राज्यवादी भी) लोकतान्त्रिक विचारधारा की सुरक्षा के लिये संघर्षशील थे रूस की सफल क्रान्ति ने मार्क्स के विचारों को व्यावहारिक रूप देना आरम्भ कर दिया था, मध्य यूरोप में तानाशाही का उदय हो रहा था और भारत महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता संग्राम में संलग्न था, एक नए ढङ्ग और नए सत्य-अहिंसा के शस्त्र द्वारा।

मार्क्स की विचारधारा दुःखी और पीड़ितजन-समाज की मुक्ति के लिये सशस्त्र क्रान्ति की ओर संकेत कर रही थी किन्तु महात्मा गांधी की भारतीय भूमि के अनुकूल विचारधारा ने क्रान्ति के उस पश्चिमी रूप को उभड़ने ही नहीं दिया। नवयुवक समाज, देश और समाज के स्वरूप में क्रान्ति और विद्रोह

द्वारा आमूल परिवर्तन करने का इच्छुक था,. ऐसे युवक समाज को, किसानों और मजदूरों के प्रति पूर्ण सहानुभूति व्यक्त कर गांधी जी ने अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास किया। कांग्रेस के कार्यक्रमों में निम्न वर्ग एवं सामाजिक सुधारों को पर्याप्त महत्व दिया गया। परिणाम स्वरूप विद्रोह भ वना और युवक-समाज की उग्रता बहुत कुछ ठण्ढी हो गई; हां कुछ व्यक्तियों का एक वर्ग अपने ढङ्ग से कार्य करता रहा और उसकी उग्रता पर गांधीवाद का रंग पूर्णत: न जम सका।

इन परिस्थितियों का कहानी साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा, फलत: उसमें दो प्रकार की भावधारा प्रवाहित होती हुई दिखाई पड़ती है—(१) प्रतिगामी शक्तियों के प्रति कटु एवं प्रतिहिंसक, तथा (२) गांधीवादी आध्यात्मिकता से प्रभावित व्यापक सहानुभूति के साथ शोषक और शोषितों की ओर द्विमुखी प्रवृत्ति वाली।

इस युग के प्रथम उन्नायकों में श्री जैनेन्द्रकुमार, अज्ञेय और भगवती चरण वर्मा मुख्य हैं।

श्री जैनेन्द्रकुमार—

इन्होंने हिन्दी कहानी कला में सर्वथा एक नवीन शैली की सृष्टि की है। 'फांसी' और 'खेल' इनकी बहुत पहले की कहानियां हैं जो संवत १९८५ के करीब लिखी गई थीं। जैनेन्द्र जी एक विचारक और बुद्धिवादी दार्शनिक हैं और इनका यही रूप कहानियों में प्रतिबिम्बित हुआ है। अन्तर्द्वन्द्व की व्याख्या और यथार्थ चित्रण के कारण आप की कहानियाँ घटनाप्रधान न होकर विचार प्रधान हैं। जीवन के प्रति व्यापक दृष्टिकोण,

करुणामिश्रित भावुकता और विचारशील चरित्रों के संघर्ष का चित्रण, ये तत्व हैं जिन्होंने जैनेन्द्र के व्यक्तित्व को उनकी कहानियों में प्रतिष्ठित कर दिया है।

जैनेन्द्र जी ने जहाँ नये भाव और विचारशैली दी वहां भाषा का भी एक नया रूप उपस्थित किया, जो उर्दू से प्रभावित नहीं और जिसे गुजराती के शब्द प्रयोगों से चिढ़ नहीं; वह वास्तविक और दिल्ली की जीती-जागती हिन्दी है। इनकी टेकनीक पर पूर्वी कलाकारों का प्रभाव नहीं है। प्राचीन राजकुमार और शिल्पकारों की जीवन गुत्थियाँ, रेलयात्रा की रोचक घटनाएँ और मित्रों की बैठक में किसी विशिष्ट समस्या पर तार्किक विवेचन, इनके प्रिय विषय हैं। कथानक के सीधे और सुलझे हुए होने पर भी वे कभी कभी स्वयं मनोवैज्ञानिक गुत्थियों में उलझ जाते हैं। अपनी बाद की कहानियों में वे दार्शनिक और विचारक अधिक बन गये हैं, अतः उनमें शुष्कता और नीरसता आ गई है।

इन्होंने लगभग दो सौ कहानियाँ लिखी हैं, जो 'वातायन', 'दो चिड़ियाँ' और 'एक रात' नामक संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी मान्यताएँ गाँधीवाद से प्रभावित हैं।

श्री अज्ञेय—

श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन जैसे लम्बे नाम की अपेक्षा ये 'अज्ञेय' के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी पहली कहानी संवत् १९८१ की स्काउट्स पत्रिका 'सेवा' में छपी। संवत् १९८७ में आप क्रान्तिकारी आन्दोलन में गिरफ्तार

हुए। जेल में ही आपने बहुत-सी कहानियां और कविताएँ लिखीं।

इस युग के सर्वाधिक प्रतिभा-सम्पन्न कथाकार के रूप में ये विख्यात है। इन्होंने अपनी कहानियों में सर्वथा पाश्चात्य कथा शैली को अपनाया है, और जीवन के बाह्य संघर्षों की अपेक्षा अन्तः संघर्षों का चित्रण ही इनका विशिष्ट उद्देश्य दिखाई पड़ता है। इनकी राजनैतिक और सामाजिक कहानियों में क्रान्तिकारी हृदय की अग्नि ज्वाला धधकती दिखाई पड़ती है। दीन-पीड़ित तथा शोषित वर्ग के क्रन्दन और पीड़ा को अत्यन्त मार्मिकता से चित्रित किया गया है। 'प्रतिध्वनियां' और 'कड़ियाँ' शीर्षक कहानियां इनकी शैली के उदाहरण हैं। 'कड़ियाँ' अज्ञेय जी की एक सुन्दर मनोवैज्ञानिक कहानी है। मनुष्य मात्र की बिखरी भावनाओं को, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद को कलाकार ने यहाँ बटोर कर रखा है। उसके खींचे हुये शब्द चित्र अत्यन्त ही प्रभावशाली हैं।

"सत्य देखता है— एक अधेड़ उम्र का आदमी, नंगे बदन हाथ में लाठी लिये दौड़ा जा रहा है और बीच में एक वीभत्स हँसी हँस कर कहता जाता है—"वह पाया तेरी।" और उससे कोई आठ-दस गज आगे एक देहाती युवती है। भय, पीड़ा, लज्जा, करुणा और एक अवर्ण्य भावना- एक बलिदान या अभिमान या दोनों की मुद्रा का एक जीवित पुञ्ज लहँगे की परिसा में सिमट कर भागा जा रहा है— भागा जा रहा है जान लेकर। ओढ़नी का पता नहीं है, बाल खुले हुये हैं, बड़ी बड़ी आँखें फटी जा रही हैं; भूखा शरीर पता नहीं कैसे

लहंगे के बोझ को संभाले हुए है। जब वह उछलती है तो लहंगा कुछ उठ जाता है, घुटने तक उसकी टांगें दीख जाती हैं, टांगें भी पतली, वर्षों की भूखी और पैर में चाँदी के कड़ों के नीचे खून लग रहा है, पर वे थमते नहीं, जमीन पर भी टिकते नहीं, शिकारी और शिकार का अन्तर कम नहीं होता।"

अज्ञेय जी की काव्यात्मक भावुकता अन्तर की सूक्ष्म तरङ्गभंगी को और भी साकार कर देती है। 'अमर वल्लरी' में कवित्व का यह अंश अधिक व्यक्त हुआ है। "पीपल के पेड़ ने जीवन के अनेक दृश्य देखे हैं। शताब्दियों से वह प्रहरी की भांति सिर उठाए खड़ा है। 'अमर वल्लरी' उसके कण्ठ की माला बनी हुई है किन्तु पीपल अब वृद्ध हुआ, उसकी धमनियों का रक्त-सञ्चार धीमा पड़ गया है। नित्य प्रभात और सन्ध्या की मधुवेला में स्त्री-पुरुष आकर उसके ऊपर पत्र, पुष्प चढ़ा जाते हैं। वरदान की इच्छुक ललनाएँ उसका आलिङ्गन करती हैं, किन्तु वह अशोक की भांति फूलकर उन्हें उऋण नहीं कर सकता। जीवन के कितने रहस्य उसके हृदय में छिपे पड़े हैं।"

जैनेन्द्र की भाषा की अपेक्षा इनकी भाषा अधिक प्रौढ़, प्रांजल, सुसंस्कृत और संस्कृत की तत्सम पदावली से युक्त है। 'जीवन शक्ति', 'परम्परा: एक कहानी' प्रभृति इनकी कुछ अद्वितीय कहानियाँ भी हैं, जिनका स्थान आज के हिन्दी कथा-साहित्य में बहुत ऊँचा है। 'विपथगा' और 'परम्परा' के नाम से इनकी कहानियों के दो संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें इनके गहन अध्ययन और जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण का पूर्ण आभास मिलता है।

श्री भगवती चरण वर्मा—

संवत् १९७८ में आपकी पहली कहानी 'हिन्दी मनोरंजन' में प्रकाशित हुई; परन्तु आपका ध्यान कविता लिखने की ओर रहा और संवत् १९८८ के करीब आपने फिर कहानी लिखने की ओर ध्यान दिया। आपकी कहानियों में विद्रोह-भावना और सामाजिक असन्तोष है। नवीन शिक्षा और आविष्कारों के साथ जो युग भारत में आया है, उसके आप प्रतिनिधि हैं। युग की हलचल और उसकी अशान्ति तथा उतावलापन; चाय की प्याली, कार, सुरापान, अनियंत्रित प्रेम और इन्सटालमेंट द्वारा ऋण परिशोध आदि इस युग की साधारण बातें हैं। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध की मीमांसा में 'फ्रायड' के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की छाप दिखती है। इनकी कहानियों में जीवन की विविधता है तथा मानवता के पतन और उच्छृङ्खलता के लिये एक आह। उसके विरुद्ध विरोध की भावना भी है और उसकी भर्त्सना करते हुए इन्होंने नैतिकता का सन्देश भी दिया है।

'इन्सटालमेंट' और 'दो बांके' के नाम से इनकी कहानियों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'दो बांके' शीर्षक इनकी कहानी अत्यन्त ही विचित्र है। विलासिता और वैभव की नगरी लखनऊ में वीरता का कितना पतन हो गया है और बाह्य प्रदर्शन के द्वारा किस प्रकार उसकी खाल को ओढ़कर दिखावा किया जाता है, इसका पूर्ण चित्रण इस कहानी में मिलता है। दोनों 'बांकों' के क्रिया-कलाप द्वारा किस प्रकार वीरत्वहीन वीरता का प्रदर्शन किया गया है, इसे पढ़कर लखनऊ के

जीवन का एक अङ्ग झलक उठता है। कहानी में प्रवाह है, गति है और चरमसीमा तक रहस्य की रक्षा की गई है। उर्दू के शब्दों को समेटे भाषा, यमक तथा अनुप्रास से सजी हुई तीव्रगति से चलती है। कहानी का उद्देश्य केवल स्थानीय जीवन का चित्रण मात्र है।

यद्यपि प्रथम उत्थान के उत्तरार्ध के कहानीकार भी इन प्रवृत्तियों में योगदान कर रहे हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य कलाकार भी इन नई प्रवृत्तियों के साथ-साथ अपनी पूर्व परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। वर्ण्य विषय और कलागत विशेषता के आधार पर उनका वर्गीकरण करके क्रमशः परिचय दिया जा रहा है। कोई भी कहानीकार किसी निश्चित सीमा में नहीं बांधा जा सकता, क्योंकि प्रत्येक ने विविध-विषयों की, विभिन्न शैली में अनेकों कहानियां लिखी हैं। उनकी विशिष्टताओं के आधार पर ही उनका वर्गीकरण किया गया है। कई कलाकारों के सम्बन्ध में तो यह विशेषता एकांगी ही सिद्ध होगी पर कलाकारों का वर्गीकरण, परिचय के लिये अधिक सुविधाजनक है, अपेक्षाकृत उनकी लिखी गई विभिन्न कहानियों के।

प्रथम वर्ग

जीवन की वर्तमान सामान्य समस्याओं को लेकर यथार्थ का भावपूर्ण रूप प्रस्तुत करने वाले कहानीकार—

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार—

इन्होंने कहानी के बाह्य रूप पर अधिक ध्यान दिया है और उसके टेकनीक की उत्कृष्टता की ओर अधिक सचेष्ट रहे हैं। 'एक सप्ताह' पत्रात्मक शैली में लिखी गई कहानी है।

'क ख ग' में जीवन के तीन विभिन्न चित्र हैं। 'चौबीस घन्टे' में भूकम्प द्वारा परिवर्तित एक दिन की घटनाओं का वर्णन है। 'हूक' में कांग्रेस आन्दोलन के समय अचानक ही जेल जाने वाले 'बलराज' के मानसिक भावों का चित्रण है। इनकी कहानियों में किसी एक भाव विशेष को लेकर प्रभाव उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। उसके लिये जीवन के बाह्य चित्रों को प्रस्तुत किया गया है। इन कई बाह्य घटनाओं या चित्रों के उल्लेख में एक सूत्रता का अभाव है पर वे सभी, पृथक्-पृथक् रूप में उपस्थित चित्र एक ही भाव का प्रभाव पाठक के हृदय पर डालते हैं। इन प्रभाव की कहानियों में 'काम काज' इसी प्रकार की कहानी है जिसमें तीन विभिन्न दृश्यों द्वारा आधुनिक व्यस्त जीवन की झांकी दिखलाई गई है। जीवन की यह व्यस्तता किस प्रकार हमारे हार्दिक भावों को दबा देती है, इसी का चित्रण कहानी का लक्ष्य है।

इनकी पहली कहानी १६८५ के 'विशाल भारत' में निकली। 'चन्द्रकला', 'भय का राज्य', 'अमावस' आदि इनकी कहानियों के संग्रह हैं।

श्री सियाराम शरण गुप्त—

ये श्री मैथिलीशरण जी गुप्त के छोटे भाई हैं। इन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि द्वारा हिन्दी साहित्य का भण्डार भरा है। इनकी कहानियां थोड़ी हैं, पर हैं मार्मिक। भावुक कवि होने के नाते जीवन की गहन अनुभूतियां कहानियों में भी व्यक्त हुई हैं। शैली, सरल, स्वाभाविक और बोध गम्य तथा सामान्य जनों में अपनत्व की प्रतिष्ठा कर देने वाली

क्षमता से सम्पन्न है। 'मानुषी' इनकी कहानियों का संग्रह है तथा 'झूठ-सच' 'कोटर और कुटीर' आदि इनकी सुन्दर कहानियाँ।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त—

इनकी कहानियों का संग्रह 'पाँच कहानियां' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इनकी भाषा प्रांजल, प्रवाहमयी और गद्यकाव्य का आनन्द देने वाली है। इन कहानियों को निराशा और करुणा-मिश्रित, समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व कहा जा सकता है। प्रत्येक कहानी में पन्त का कवि-रूप अधिक प्रखर हो उठा है। वर्णन में दृश्य-चित्रण की प्रधानता है और रूप-चित्रण की छाप। परन्तु इन्हीं दोनों के अन्तराल में कहानी की धारा भी प्रवाहित होती है। उक्तिवैचित्र्य और अलंकृत भाषा का प्रयोग ही इन कहानियों की विशेषता है। पन्त जी की कहानियाँ रेखा-चित्र के अधिक समीप हैं, और श्री महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखायें' कहानी कला के। कवित्वपूर्ण भाषा, उसी प्रकार का रूप-चित्रण, मोहक दृश्यों के चित्रण की उत्सुकता, समान भाव से दोनों में दिखाई पड़ती है।

श्री कृष्णानन्द गुप्त—

इनकी कहानियाँ विभिन्न प्रकार की हैं। विज्ञान और कला को लेकर चलने वाली 'पुरस्कार' 'एक अधूरी ट्रेजेडी आदि कहानियाँ भी हैं और ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि को आधार बनाकर लिखी गई, 'सैनिक विद्रोह' उद्धार आदि भी; तथा तत्कालीन

सामाजिक परिस्थितियों को लेकर लिखी जाने वाली 'हड़ताल' 'अनाथ बालक' 'वेश्या का हृदय' आदि भी हैं। इनका कथानक स्वाभाविक और रोचक तथा चरित्र-चित्रण सुन्दर होता है। विदेशी शैली की छाप लेकर इन्होंने कुछ अत्यन्त ही मनोरंजक कहानियां लिखी हैं। 'पुरस्कार' और 'उलझन' इनके दो कहानी-संग्रह हैं।

इसी वर्ग के कहानीकारों में श्री शिवपूजन सहाय अक्षयकुमार जैन तथा अपनी प्रारम्भिक कहानियों के कारण श्री रांगेय राघव आयेंगे। मानव जीवन निराशा, असफलता एवं वेदनाओं की करुण कहानी है। इनकी अधिकांश कहानियां वर्णनात्मक हैं; उनमें यथार्थ जीवन के चित्र हैं; पर वे भावुकता प्रधान बन गई हैं। वैसे तो कोई भी कहानी भावुकता और कल्पना का आश्रय ग्रहण किये बिना अपना कलात्मक रूप नहीं प्रस्तुत कर सकती; परन्तु बाद की कहानियों में पूर्णतः प्रगतिशील बन जाने वाले श्री रांगेय राघव जी की 'देवदासी' और 'अनुवर्तिनी' शीर्षक कहानियों में पूर्णतः प्रसाद जी की शैली दृष्टिगोचर होती है। इस प्रथम वर्ग के सभी कहानीकार प्रथम उत्थान काल की परम्परा को ही आगे बढ़ाने वाले हैं।

द्वितीय वर्ग

कल्पना की प्रधानता के साथ भावुकता को अधिक प्रश्रय देने वाले कहानीकारः—

श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी'—

वर्तमान हिन्दी लेखकों में वियोगी जी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो मोहक और स्वाभाविक सौन्दर्य से-युक्त संस्मरण लिख

'वट दादा अमराई के सभी वृक्षों में बूढ़े थे और सभी उन्हें श्रद्धा और आदर से वटदादा कहा करते थे। थे तो बड़े वृद्ध, किन्तु उनका हृदय बालकों से भी सरल और युवकों से भी सरस था। वे अमराई के कुलपति थे। उनमें तपस्वियों का तेज भी था और गृहस्थों की कोमलता भी।'

'ठीक इन्हीं से सटा रामी का कुँआ था—पक्का, ठोस, सजल, स्वच्छ, गम्भीर, उदार।'

'तब मैं ऐसी नहीं थी। लोग समझते हैं मैं सदा की ऐसी ही हूं—मोटी, चौड़ी, भारी, भरकम। तब मैं न तो इतनी लम्बी थी, न इतनी चौड़ी। तब मैं एक छोटी सी पगडंडी थी—दुबली, पतली, सुकुमार, नटखट।'

कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति एवं स्त्री-चरित्र का गहन अध्ययन कतिपय वाक्य किस प्रकार व्यंजित करते हैं, वह इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा:—

'स्त्री का सबसे बड़ा बल है रोना; उसकी सबसे बड़ी कला है झगड़ा करना। झगड़ा करके तिनकना, रूठ कर रोना, फिर दूसरे को रुला कर मान जाना, नारी-हृदय का प्रियतम विषय है।

'स्त्री यदि सचमुच स्त्री है तो सब कुछ सह सकती है, पर अनेक रूप का तिरस्कार नहीं सह सकती।.........स्त्री का स्त्रीत्व ही संसार का सबसे महान् सौन्दर्य है।

जगह जगह तथ्यों को भी स्पष्ट किया गया है:—

'लक्ष्य और साधन में प्राकारिक अन्तर न होते हुये भी पारिमाणिक अन्तर है।' प्रेम सभी कर सकते हैं; किन्तु सेवा

सभी नहीं कर सकते।' 'प्रेम से प्रेमिक मिलता है सेवा से ईश्वर' आत्मा और शरीर का द्वन्द्व संसार की अमर कहानी।'

कहानी अन्त में एक टीस एक कराक, एक वेदना पाठक के हृदय पर छोड़ जाती है। शक्ति-सम्पन्न भाषा गतिशील हो लक्ष्य तक पहुंचती है। इनकी 'खंडहर' और 'तकली' आदि कहानियों में भी ये जड़ वस्तुये मानव-बुद्धि और चेतना से संयुक्त होकर अपने अतीत का इतिहास सुनाती हैं; मानव के ही मनोभावों, प्रेम-कलह, मान-अभिमान ईर्ष्या और द्वेष आदि के चित्र वे भी प्रस्तुत करती हैं। वे जड़ हैं पर कहानीकार की कल्पना और कलात्मक प्रेरणा ने उन्हें सचेतन, सप्राण और वेगवान बना दिया है। कल्पना प्रधान कहानियों का अन्तिम विकसित रूप इन्हीं में उपलब्ध होता है।

तृतीय वर्ग

सामान्य जीवन की सामान्य समस्याओं को आधार बना कर कहानी लिखने वाले कलाकार इस श्रेणी में आयेंगे। इन समस्याओं में सामाजिक भी हैं, व्यक्तिगत भी और कोई कोई आर्थिक तथा राजनीतिक भी।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'—

'अश्क' जी का पहला कहानी संग्रह 'पिंजरा' के नाम से संवत् २००१ में प्रकाशित हुआ। इसकी कहानियाँ सामाजिक कुरीतियों को आधार बना कर लिखी गईं हैं। इनमें यथार्थ जीवन के सफल प्रतिबिम्ब अंकित हुये हैं। 'पिंजरा' शीर्षक कहानी में एक उच्च कुल की नारी; 'शान्ति' समाज के कृत्रिम

वातावरण एवं अपने दर्पी पति के कारण—जो गरीबों से बोलना भी हेय समझता है—अपनी बचपन की सहेली उमा से नहीं मिल पाती। उसके हृदय के मार्मिक उद्गार उसके पत्र में व्यक्त हुये हैं। 'पाषाण' में कैलाश नाम के बालक का मनोवैज्ञानिक चित्रण अधिक सफल हुआ है। 'जीवन', 'पत्नीव्रत', 'नन्हा' आदि कहानियों में आधुनिक सभ्यता का आडम्बर पूर्ण रूप चित्रित हुआ है। इन कहानियों में उर्दू के अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

'छींटे' में ४२ कहानियाँ संगृहीत हैं। हास्य और व्यंग्य इस संग्रह की कहानियों की विशेषतायें हैं। इनका नवीनतम कहानी संग्रह 'दो धारा' है। इसकी कहानियों में इनकी व्यंग्य-मयी यथार्थवादी शैली और भी निखर उठी है; कला का रूप अधिक परिष्कृत और सुष्ठु बन गया है। 'छींटे' की कहानियों में हास्य और व्यंग्य की प्रधानता है; इनमें गाम्भीर्य की। 'बच्चे' 'टेबल लैण्ड' और 'कैप्टन रसीद' आदि सुन्दर कहानियाँ हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक तथा कविता पर समान रूप से इन्हें अधिकार प्राप्त है।

श्री देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' —

इनकी कहानियाँ समय-समय पर पत्र, पत्रिकाओं में निकलती रहती हैं। 'किस्मत' शीर्षक कहानी में साहूकारों के कर्ज से भाराक्रान्त किसानों की भीषण तथा रोमांचकारी करुणा-वस्था का दिग्दर्शन कराया गया है। 'उलझन' में दहेज प्रथा का अभिशाप, अनुरूपता' में देशभक्ति की झलक तथा 'अमा-वस' में मान-मर्यादा की रक्षा के लिये 'रजनी' का मूक बलिदान

आदि चित्रित किया गया है। 'ममता' 'नीलम' आदि चरित्र प्रधान कहानियाँ हैं। कथोपकथन की स्वाभाविकता भाषा की संस्कृत-गर्भित-पदावली, प्रचलित उर्दू शब्दों और मुहावरों का प्रयोग, उच्च कल्पना और करुण-उद्रेक आदि इनकी कहानियों के गुण हैं।

इनकी कुछ कहानियों में औत्सुक्य की रक्षा भी नहीं हो सकी है और न मनोविश्लेषण ही उच्चकोटि का हो सका है, जो आधुनिक कहानियों का प्राण है। 'अन्तर्ज्वाला' (सं० १९९७) आदि इनकी कहानियों के संग्रह हैं।

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री—

संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ और अध्ययनशील विद्वान होने के कारण भाषा और भावों की अद्भुत समन्वित शैली, इनकी विशेषता है। इनकी कहानियों में आधुनिक युग के प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों तथा जनरुचि और मानव-हृदय की दुर्बलताओं का सुन्दर निदर्शन हुआ है। 'कानन' शीर्षक कहानी में ललित, लीला और कानन का चरित्र अधिक स्पष्ट हुआ है। 'भाई-बहिन' 'गङ्गा' 'मीना' 'वेश्या' आदि कहानियों के पात्र समाज के कलंक और उसकी हीनता के द्योतक हैं। 'कानन' (सं० १९९८) आदि इनकी कहानियों के संग्रह हैं।

श्री राजेश्वरप्रसादसिंह—

इनकी कहानियों में प्रेम और उससे उत्पन्न सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया गया है। 'भूल' और 'सावित्री

का साहस' आदि में स्त्री-चरित्र के उज्ज्वल पक्ष, सतीत्व का चित्रण है। 'भूल' की पति परित्यक्ता नायिका जीवन भर अपने पति की प्रतीक्षा करती है तथा सावित्री अपने सतीत्व की रक्षा के लिये एक पुरुष की हत्या करती है। 'उमा' 'बेला' आदि कहानियां अच्छी हैं। इनकी कहानियों में चारित्रिक अभिव्यक्ति उत्कृष्ट श्रेणी की है परन्तु मनोवैज्ञानिकता के ठोस धरातल पर उनकी नींव नहीं है। 'कलंक' आदि इनकी कहानियों के संग्रह हैं।

श्री शान्ति स्वरूप गौड़—

आधुनिक काल में घटना प्रधान कहानियां उत्कृष्ट श्रेणी की नहीं मानी जातीं। इनकी कहानियों के अधिकांश विषय वे काल्पनिक सामाजिक समस्यायें हैं, जो न तो समाज की प्रगति में वास्तविक रूप से बाधक हैं और न जिनके हल से समाज की गाड़ी प्रगति के मार्ग पर तेजी से दौड़ने ही लगेगी। इन्होंने भले-बुरे पाश्चात्य ढंग की तुला पर ही भारतीय समाज को तोलने का प्रयास किया है और अन्धानुकरण में "त्रयोदशी" संग्रह की कहानियां बहुत आगे बढ़ गई हैं। श्रीमती बेला चटर्जी जैसी नारियां भी उनमें हैं, जो विवाह के पूर्व ही कई सन्तानें पैदा करती हैं।

इनकी कहानियों के संग्रह में 'नरकुल वन' सुन्दर है। 'माँ की भूल'; चौथी, 'सत्ताईस वर्ष बाद' आदि कहानियों में क्रमशः ग्राम्य जीवन का चित्र, अहिंसा और सत्य-वीरता का आभास तथा द्वितीय विश्व युद्धजन्य महंगाई और मध्यवर्ग के जीवने-चित्र का सुन्दर अंकन हुआ है। 'मिल मालिकों के

संघर्ष में' सं० १६६६ के आन्दोलन की झलक मिलती है। एक कलाकार के रूप में ये विकासशील अवश्य हैं।

श्री शम्भूनाथसिंह—

ये एक नवयुवक, भावुक कवि हैं। कवि-हृदय की अनुभूतियों ने इनकी कहानियों के गद्य में संगीत-स्वर-लहरी उत्पन्न कर दी है। ये प्रसाद जी की शैली के अनुयायी कहे जा सकते हैं। सामाजिक जीवन के गहरे, धुँधले रङ्गों को मूर्त करने के साथ-साथ इन्होंने जीवन और जगत की उन जटिल समस्याओं का रूप प्रस्तुत किया है जिनके समाधान के लिये व्याकुल मानव-मन सर्वदा अन्वेषण में प्रवृत्त रहता है।

'राजरानी' इनकी कहानियों का पहला संग्रह है जिसमें कला और सजीवता की दृष्टि से कुछ कहानियां प्रभावशाली हैं। 'जीवन-संघर्ष' 'मृत्युशय्या' आदि इनकी वे कहानियां हैं जिनमें आर्थिक समस्या और वर्गों के अन्तर से उत्पन्न दुर्दशा का चित्रण है। 'राजरानी' की कर्त्तव्य परायणता में क्रान्तिकारी जीवन की दुर्बलताओं का संहार, एक युग विशेष का चित्र उपस्थित करता है।

चतुर्थ वर्ग

पारिवारिक समस्याओं को आधार बनाकर कौटुम्बिक जीवन को चित्रित करने वाले कहानी लेखक इसमें आयेंगे। इस काल में कहानी लेखिकाओं ने भी अपनी सुकुमार कल्पना का आश्रय ले गृह जीवन से सम्बन्धित अनेकों कहानियां लिखी हैं। उनमें धनी, मध्यम और निम्नवर्ग— तीनों की ही सम-

स्थायें, तीनों के ही गृहस्थ-जीवन के चित्र अङ्कित हुये हैं। 'अश्क' आदि की नवीनतम कहानियों में पारिवारिक-चित्रण अवश्य मिलता है किन्तु इस क्षेत्र की अधिष्ठातृ, और लघु तथा महान समस्याओं से परिचित लेखिकाओं की कहानियां अधिक प्रतिनिधिक और महत्वपूर्ण हैं:—

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान—

इन्होंने हिन्दू घरों में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आन्दोलन करने वाली अनेकों कहानियां लिखी हैं। हिन्दी साहित्य के काव्यक्षेत्र में सर्वाधिक लोकप्रिय कृति "झांसी की रानी" में वीररस का उद्रेक भले ही हो परन्तु कहानियों में करुणा और वात्सल्य की ही प्रमुखता है। इन दोनों का समन्वय इनकी 'किस्मत' आदि कहानियों में दिखाई पड़ता है।

'भौजी ! तुम सदा सफेद धोती क्यों पहनती हो ?'
'मैं क्या बताऊँ मुन्नी !'
'क्यों भौजी ! क्या अम्मा तुम्हें रंगीन धोती नहीं पहनने देती ?'
'नहीं मुन्नी, मेरी किस्मत ही नहीं पहनने देती, अम्मा भी क्या करें ?'
"किस्मत कौन है भौजी ! वह भी क्या अम्मा की तरह तुमसे लड़ा करती है और गालियां देती है ?"

प्रारम्भ के ही ये संवाद कितने स्वाभाविक; मार्मिक और करुण-वेदना से ओत-प्रोत हैं। सरल और सुशील स्त्री को भी हिन्दूघरों में अपमान और लांछना का शिकार बनना पड़ता है, यदि वह दुर्दैव से विधवा बना दी गई हो। किशोरी और

रामकिशोर मध्यमवर्ग के परिवार के सदस्य हैं, दोनों का ही चरित्र सुन्दरता से चित्रित किया गया है। 'उन्मादिनी' इनकी कहानियों का संग्रह है।

श्रीमती कमलादेवी चौधुरी—

इन्होंने कहानी-क्षेत्र में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। गृहस्थ-जीवन इनका विशेष क्षेत्र है और काव्य प्रेरणा, सरलता तथा उल्लास इनकी कहानियों का प्राण। स्त्री हृदय की करुण-कोमल अनुभूतियों को जितनी मार्मिकता से ये व्यक्त करती हैं उतनी पुरुष लेखकों द्वारा सम्भव नहीं है। 'साधना का उन्माद' और 'मधुरिमा' आदि उत्तम श्रेणी की कहानियां हैं जिनमें स्त्री हृदय की अद्भुत सूझ है। 'पिकनिक' जैसी नीरस कहानियां भी हैं जिनमें व्यर्थ ही विस्तार किया गया है। भावों की विरोधी दिशाओं के चित्रण में इनकी कला ने अधिक सफलता प्राप्त की है। भाषा गतिशील और आम फहम है। 'उन्माद' इनकी कहानियों का सुरुचिपूर्ण संग्रह है।

श्रीमती कमला त्रिवेणी शंकर—

आधुनिक भारतीय समाज की महिलाओं की स्थिति का सफल और सुन्दर रूप इन्होंने अपनी कहानियों में अङ्कित किया है। मध्यम वर्ग की जनता के अभावों, भावों और व्यवहारों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, सामान्य वातावरण से कथानक का अन्वेषण, सामयिक भावनाओं की छाया में भारतीय नारी का चित्रण तथा उज्ज्वल और आदर्शपूर्ण भविष्य का अवतरण ही इनका लक्ष्य है। सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं, स्त्री

श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरिक्सा—

हिन्दी के उन्नत और प्रगतिशील कहानी लेखकों एवं लेखिकाओं में, इन्होंने थोड़ी ही कहानियों द्वारा सम्मानपूर्ण स्थान बना लिया है। भारतीय नारी जीवन की करुण-व्यथा, अन्तः सलिला सरस्वती की भांति इनकी कहानियों में प्रवाहित होती है। 'आदम खोर' इनकी कहानियों का प्रभावशाली संग्रह है।

पंचम वर्ग

प्रारम्भ से ही प्रेम, कहानी ही नहीं काव्य, नाटक आदि साहित्य के अन्य अंगों का भी प्रमुख आलम्बन रहा है। प्रेम के उस रूप को, जिसे आधुनिक काल ने 'रोमांस' नाम दे रक्खा है, आधार बनाकर कहानी लिखने वाले कलाकार इस श्रेणी में गिने जा सकते हैं—

श्री आरसीप्रसादसिंह—

नवयुवक कवि हृदय-कल्पना जगत् में भावुकतापूर्ण रोमांस के अधिक सपने देखता है। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में तो वह यथार्थ के ठोस धरातल पर उतरने की कौन कहे, झांकने से भी असहमति प्रकट कर देता है किन्तु जब वह अपनी कामनाओं को पूरा होते नहीं देखता तो उसका सम्पूर्ण उल्लास निराशा की एक गहरी वेदना में परिवर्तित हो जाता है। कवि हृदय का यही तथ्य उनकी कहानियों में व्यक्त हुआ है। यद्यपि घटना प्रधान और रोमांसपूर्ण कहानियों की अपेक्षा चरित्र प्रधान और मनोविश्लेषण करने वाली कहानियां अधिक उत्कृष्ट मानी

जाती हैं किन्तु फिर भी 'शेष पत्र' आदि कहानियों में निराशा का चरमरूप दिखाई पड़ता है। 'काल रात्रि' में इनकी नौ कहानियां संगृहीत हैं; जिनमें कवि-सुलभ भावुकता उमड़ी पड़ती है।

श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र—

करुणा, वियोग और असफल प्रेम की टीस इनकी कहानियों के वर्ण्य विषय हैं, प्रत्येक के साथ सामाजिक जीवन के एक पहलू का चित्र हमारे सामने आ जाता है। एक मार्मिक चित्र और प्रश्नवाचक चिह्न उपस्थित कर ही इनकी कहानियां समाप्त हो जाती है जो पाठकों के हृदय में एक कसक भर जाती है। 'दो अध्याय', 'कच्चाधागा' और 'हृदय का घाव' आदि इनकी शैली का प्रतिनिधित्व करने वाली कहानियाँ है।

श्रीमती कौशल्या 'अश्क'—

रोमांसपूर्ण कहानियों का विकसित और सुन्दर रूप इनकी कहानियों में दिखाई पड़ता है। सरल, भावुक और आश-निराशा के मोहक चित्र इनमें मिलते हैं। 'टेस' 'थकान' और 'जगन्नाथ' शीर्षक कहानियाँ कला के अधिक समीप है। इनकी भाषा में भी वही व्यंग्योक्तियां, चटपटा हास्य, मुहावरों का सुन्दर प्रयोग और रूप-चित्रण के लिये उनकी स्वानुकूल व्याख्या आदि दिखाई पड़ते हैं, जैसा श्री उपेन्द्रनाथ जी अश्क की कहानियों में। चञ्चल गति से बहने वाली सरिता की तरह तरङ्गित होती हुई चलती है इनकी भाषा। 'निम्मो' पत्रात्मक शैली में लिखी गई है। दृश्य विधान और प्रकृति के उपकरणों द्वारा वातावरण प्रस्तुत करने में भी इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है।

श्री इन्द्रशंकर मिश्र—

उच्च मध्यवर्ग के जीवन में रोमांस अधिक होता है। इनका चित्रण करते हुए मिश्र जी ने जीवन और समाज पर भी दृष्टि रक्खी है। शैली व्यंग्यात्मक है और जीवन तथा समाज की विषमताओं से उत्पन्न चिन्तन की भावना भी यत्र-तत्र व्यक्त मिलती है। 'बारात' 'प्रगतिशील' 'कामरेड' आदि कहानियों का रचना कौशल चुस्त और गठा हुआ है। 'गहरि गहरि नदिया गहरानी' में प्रतीक का आश्रय लिया गया है। स्थानीय बनारसी शब्दों का प्रयोग भी आपने खुलकर किया है।

श्री पहाड़ी—

श्री पहाड़ी जी के १० कहानी संग्रह अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इन्होंने विविध प्रकार की कहानियां लिखी हैं। 'सफर' में इनकी २१ प्रेम कहानियों का संग्रह किया गया है। 'यथार्थवादी रोमांस' संग्रह की कहानियां भी इसी श्रेणी में आयेंगी। अपनी इस प्रकार की कहानियों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है— 'नग्न चीज वैसे वीभत्स लगती है, लेकिन मुँह छिपाकर चलना एक नैतिक अपराध है।' इसी उक्ति को चरितार्थ करती हैं उनकी कहानियाँ।

पात्र, सामान्य समाज से लिये गये हैं; उनके भाव, विचार, कल्पना और रोमांस को यथार्थरूप में चित्रित किया गया है, लेखक केवल माध्यम है। 'फ्रांस के मैदान में' जैसी कहानियों में पहाड़ी जीवन की झलक है। प्रेम कहानियों में 'वह किसकी तसवीर थी ?' 'छायावादी हिरोइन' और 'सफर' आदि उत्कृष्ट हैं जिनमें व्यंग्योक्तियों का भी समावेश किया गया

है। 'रूस जर्मन सन्धि का अन्त' जैसी विस्तृत, किन्तु अर्थहीन, कला विहीन कहानियाँ भी इन्होंने लिखी हैं। आधुनिक कथाकारों में श्री सुदर्शन जी के समान ही इन्हें भी ख्याति प्राप्त है।

श्री केसरीचन्द के दो संग्रहों में उनकी रोमांस से भरी कहानियाँ दी गई हैं किन्तु वे कला की दृष्टि से उत्तम श्रेणी की नहीं बन सकी हैं।

आज हिन्दी में 'माया' 'मनोहर कहानियाँ' सरिता आदि अनेकों ऐसी पत्रिकायें निकलती हैं और उनमें ख्यात, कुख्यात और प्रख्यात अनेकों ढंग के लेखक अपनी रोमांसपूर्ण कहानियाँ प्रकाशित करवाते हैं। जिस प्रकार उनकी कहानियाँ एक ही प्रकार की (वस्तु, भाव और शैली, सभी में) होती हैं, उसी प्रकार ये सभी लेखक प्रायः एक ढंग की, जिनमें कोई नवीनता नहीं होती, भाषा और शैली भी व्यवहार में लाते हैं। किसी फैक्टरी के एक ही सांचे में ढली होती हैं ये कहानियाँ। चाहे सुरुचि के निम्न स्तर के कारण हो, चाहे मनोरञ्जन प्रदान करने की अधिक क्षमता के कारण, ये कहानियाँ अधिक पढ़ी जाती हैं और अन्य कहानियों के पाठकों की अपेक्षा इनकी पाठक-संख्या भी अधिक है।

फिल्म अभिनेताओं में श्री किशोर साहू का संग्रह 'टेसू का फूल' अधिक पढ़ा गया। कहानियों में 'टेसू का फूल' मर्यादा का उल्लंघन भी कर गया है। इसी प्रकार ऊषा मित्रा के 'मेघ मल्लार' संग्रह की 'अतृप्त वासना', 'रूप का मोह' और 'ललिता की डायरी' में रोमांस का रूप पर्याप्त आगे बढ़ा हुआ है।

षष्ठम वर्ग

फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त के अनुसार काम-वासना और उसकी तृप्ति प्राणिमात्र का अनिवार्य प्राकृतिक धर्म है। शिशु से लेकर वृद्ध तक, किसी न किसी रूप में अपनी इस प्राकृतिक भूख की शान्ति करते हैं। प्रकृति और पुरुष का रूप एवं सम्बन्ध ही चिरन्तन सत्य है, जो स्थायी रहता है। शेष सामाजिक सम्बन्ध कृत्रिम, अतएव उस सत्य के सामने अक्षम हैं। फ्रायड की इस दार्शनिक विचारधारा ने साहित्य एवं कला को भी प्रभावित किया।

'सेक्स' समस्या को आलम्बन बनाकर लिखी जाने वाली कुछ कहानियाँ तो प्रथम उत्थान काल में भी लिखी गई थीं। प्रेम और सेक्स एक ही वस्तु नहीं हैं; इन दोनों के स्वरूप का अन्तर केवल निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

(अ) प्रेम अपने पूर्ण रूप में त्याग की क्षमता उत्पन्न कर सकता है। काम-वासना का अभाव उसके सौन्दर्य को बढ़ा सकता है, घटा नहीं।

(ब) 'सेक्स' में शारीरिक काम-वासना की भूख अनिवार्य है। इस भूख की प्रबलता के आगे समाज के बन्धन शिथिल हो जाते हैं। इस भूख की शान्ति के बाद यह आवश्यक नहीं कि सम्बन्ध बना ही रहे।

(स) इसका एक रूप मानसिक भूख भी है, जो केवल काम से सम्बन्ध रखती है। चूँकि साहित्य में मानसिक विलासिता का यह रूप अधिक दिखाई पड़ता है, अतः इसे भी 'सेक्स' के भीतर गिन लेना चाहिये।

वैसे तो अधिकांश रोमांसपूर्ण कहानियों का समाहार इस वासना तृप्ति के साथ ही हो जाता है, किन्तु उनमें यदि प्रेम का वह उज्ज्वल रूप भी हुआ जो जीवन में गति देता है, तो उसे अलग पंचम वर्ग में रक्खा जा सकता है। उदाहरण के लिये श्रीमती कौशल्या अश्क की कहानी 'ठेस' ली जा सकती है, कवि और रजवा के सम्बन्ध उत्तेजक हैं। उद्दीपन का सुन्दर वर्णन है, रजवा का हृदय अपनी उस स्वाभाविक भूख से छटपटाता रहता है, वह वर्णन इन्द्रियों में गुदगुदी पैदा कर देने के लिये पर्याप्त है, किन्तु अपनी इसी भूख की कवि द्वारा तृप्ति न हो सकने के कारण वह उसे सवदा के लिये छोड़ जाती है। इसलिये यह रोमांसपूर्ण कहानियों में ही गिनी जायगी। यद्यपि वह 'फ्रायड' के सिद्धान्त की ही पुष्टि करती है।

श्री नरेश—

फ्रायड के मनोविश्लेषण और सेक्स समस्या को लेकर लिखी गई प्रतिनिधि कहानियां श्री नरेश की हैं, जो 'गोधूलि' में संगृहीत हैं। 'पागल' का प्रमुख पात्र राजीव इसलिये पागल हो गया है कि उसने अपनी यौन उत्तेजनाओं का दमन किया है। 'रानी' में काम की अतृप्ति एवं 'कल्पना परी' में नग्नप्रेम की कथायें गुम्फित हैं। 'गोधूलि' कहानी में अनिमा और योगेश के स्वच्छन्द यौवन प्रेरित प्रेम की विषम ध्वनि है। इनकी कहानियों में यौन विकारों के उग्र चित्र अङ्कित हैं। 'पागल' में प्रोफेसर साहब कहते हैं कि 'कामतत्वों को अप्राकृतिक रूप से दमन नहीं करना चाहिये।'

इनकी कहानियों में दो अलग टेकनिक हैं— एक में प्रवाहित अभिप्राय, यौन सम्बन्धों की त्रिविध प्रतिक्रिया का

दर्शन है। दूसरे में बाह्य घटना-व्यापार या स्थिति विशेष से अचेतन मस्तिष्क की जागृति। इनकी कहानियों में व्यथा, अव-साद और घुटन का वातावरण है।

श्री मधुसूदन—

इन्होंने भी सेक्स से सम्बन्ध रखने वाली कई कहानियां लिखी हैं। 'एक औरत और एक वेश्या', 'प्रतिशोध', 'नाजायज ताल्लुकात', 'मुक्ति' आदि कहानियां इसी ढंग की हैं। घूँघट खोलकर मुख छवि देखने की प्रबल भावना के कारण होने वाली छटपटाहट' का ही इनमें चित्रण है। उन्मुक्त वासना और मौन दुर्बलताओं की अभिव्यक्ति में पात्रों का चरित्र चित्रण बहुत कुछ कृत्रिम बन गया है। केवल मानसिक अतृप्ति ही सभी जगह भलकती है। 'उजाले से पहले' इनकी कहानियों का संग्रह है।

श्री नरसिंहराम शुक्ल—

इनकी कहानियों में भी मानसिक विकलता और विला-सिता के चित्र अङ्कित मिलते हैं। कल्पना और कवित्व दोनों का मोहक रूप इनकी भाषा, शैली, भाव-विचार सभी में दिखाई पड़ता है। शैली उत्तम पुरुषात्मक है। इनकी कहानियों के रूप-परिचय के लिये 'उर्वशी और मैं' देखी जा सकती है, जिसमें ये अधिक व्यक्त हुये हैं।

श्री ब्रजेन्द्रनाथ गौड़—

इनके दो कहानी संग्रह 'बिखरी कलियां' और 'पेरोल पर' निकल चुके हैं। ये कहानियाँ रोमांसपूर्ण लिखी जाने वाली कहानियों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इन्हें न तो

कोरी भावना प्रधान कहा जा सकता है न पूरी रोमांस वाली। इनमें आलम्बन, शैली और कथानक तो रोमांसपूर्ण हैं पर इसमें हार्दिक भावनाओं को अधिक प्रकाशन मिला है। भावुक, विराम, मुहब्बत की तालीम, मनोरंजक और सहानुभूति जाग्रत करने वाली कहानियाँ हैं।

सातवां वर्ग

अपनी कहानियों में हास्य रस की अवतारणा करने वाले कलाकार इस श्रेणी में आयेंगे। प्रथम उत्थान काल के अन्तिम समय तक हास्य रस के कहानी लेखकों की संख्या उँगलियों पर गिनी जाने लायक रही, किन्तु इस काल में उनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। कुछ कलाकारों का परिचय दिया जा रहा है—

श्री अन्नपूर्णानन्द—

उच्चकोटि के शिष्ट हास्य लिखने में आप बेजोड़ हैं। सामाजिक जीवन के विकृत पक्ष, वर्ग विशेष या व्यक्ति का बेढंगापन और दोष इनके हास्य की अवतारणा के उपकरण हैं। शैली में अनोखापन है। 'मेरी हजामत' 'मगन रहु चोला' 'महाकवि चच्चा' और 'मंगल कोट' आदि इनके प्रकाशित और उल्लेखनीय हास्य ग्रन्थ हैं।

श्री कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' —

इन्होंने भी हास्यरस की कुछ मनोरञ्जक कहानियाँ लिखी हैं। ये अतिरञ्जित होने पर भी व्यक्तियों के कुछ स्वाभाविक ढांचे सामने लाती हैं।

इनकी हास्यरस की कहानियों का संग्रह 'मौसेरे भाई' के नाम से छपा है। हास्यरस के आधुनिक लेखकों की यह

रखने के उत्साह में जुगनू पकड़ने नीम की डाल पर चढ़ जाता है जब कि वह पेड़ पर चढ़ना भी नहीं जानता। जहां स्वाभाविक घटनाओं को आधार बनाया गया है वहां इनकी कहानियां अधिक सफल बन पड़ी हैं। 'ब्याह के लिये फोटो' और 'लिफाफों में प्रेम' सुन्दर कहानियाँ हैं।

'नई कला' संग्रह द्वारा इनकी कहानी कला को पूरी तरह देखा जा सकता है। भाषा में व्यंग्योक्तियां और लाक्षणिक प्रयोगों की कमी के कारण केवल परिस्थितियां ही हास्य उत्पन्न करती हैं।

श्री अमृतलाल नागर—

इनकी मनोरञ्जक और लाक्षणिक प्रयोगों से युक्त मुहावरेदार भाषा प्रतिपंक्ति द्वारा पाठकों को हास्योन्मुख करती चलती हैं। "उसने उनकी लिक्वडेशन में आई हुई आँख को शान में चन्द चुने हुये अल्फ़ाज कह दिये" जैसे लाक्षणिक प्रयोग अनेकों मिलेंगे। पात्रों के स्वभाव और उनकी पद-मर्यादा के अनुकूल भाषा का व्यवहार कराकर भी वे हास्यजनक परिस्थिति उत्पन्न करने में समर्थ हो जाते हैं। 'प्याले में तूफान' आदि इनकी कहानियों के नमूने हैं। 'अकबरी लोटा' शीर्षक कहानी को सबसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई।

श्री बद्रीनारायण शुक्ल—

इन्होंने भी साधारण परिस्थितियों को आधार बनाकर उच्चकोटि के हास्य की सृष्टि की है। 'माया' 'जन्म दिन' आदि कहानियां व्यंग्यात्मक शैली एवं सामान्य परिस्थितियों की पृष्ठभूमि ग्रहण करने के कारण सुन्दर बन पड़ी हैं। उपमायें

सुन्दर एवं अनोखी हैं। "लोग भक्ति के नशे से मस्त होकर इस तरह झूमने लगते जैसे हवा से गेहूं के खेत।" "गरमी ऐसी पड़ रही थी कि शरीर पसीने का वाटर वर्क्स बन गया था।" 'शास्त्री साहब' इनकी कहानियों का संग्रह है; तथा 'घड़ी' और 'मेरा रुमाल' कहानियां व्यक्ति के अद्भुत आचरण द्वारा हास्य उत्पन्न करती हैं।

श्री श्रीनिवास जोशी—

इनकी हास्यरस सम्बन्धी कहानियों का संग्रह 'चिक का पर्दा' प्रकाशित हुआ है। इसकी कहानियों में "डेथ कण्ट्रोल" शीर्षक कहानी उत्तम श्रेणी की है।

श्री रघुकुल तिलक ने प्रारम्भ में हास्यव्यंग्य से पूर्ण कुछ कहानियाँ लिखी हैं। श्री झपसटराय 'बनारसी' का संग्रह 'गरम चाय' हास्यपूर्ण कहानियों का ही है। श्री काशीनाथ उपाध्याय ने भी सामयिक समस्याओं को काल्पनिक घटनाओं द्वारा हास्य का आलम्बन बनाकर कुछ कहानियाँ लिखी हैं।

श्री कुटिलेश जी ने भी हास्य उत्पन्न करने वाली कुछ कहानियाँ लिखी हैं। इनमें "सिनेमा पुराण" जैसी छन्दोबद्ध कहानियाँ भी हैं और 'वे अनोखी सभा' आदि गद्यमय। 'खेदू सरदार' व्यंग्य शब्दचित्र और 'ससुराल की धांधली' मनोरंजक कहानी है।

आठवां वर्ग

द्वितीय विश्वयुद्ध की घटनाओं को आधार बनाकर कहानी लिखने वाले कलाकार दो प्रकार के हैं। प्रथम भाग में तो वे कलाकार आयेंगे जिनकी कहानियाँ सोद्देश्य लिखी गई हैं और वे एक विशिष्ट धारा को अन्तः में प्रवाहित करती हैं।

द्वितीय भाग में वे कलाकार हैं जिन्होंने युद्ध की घटनाओं को आधार बनाकर भी केवल मनोरंजन या भावनात्मक प्रवाह के सृजन का प्रयास किया है—

श्री प्रभाकर माचवे —

द्वितीय विश्वयुद्ध एक ऐसी विचारधारा के विरुद्ध लड़ा गया, जो अपनी उग्रता के कारण एक ओर तो पूँजीवादी लोक-तन्त्र के लिये ख़तरा बन रहा था, दूसरी ओर साम्यवाद के लिये। उस फासिस्ट एवं नाज़ीवाद के विनाश के लिये, पूँजी-वादी अमेरिका, ब्रिटेन और फ्रांस तथा साम्यवादी रूस एक साथ हो गये, यद्यपि ये दोनों विचारधारायें भी स्वयं एक दूसरे की शत्रु थीं। समान शत्रु से लड़ने के लिये यह उनका क्षणिक मेल था। जर्मनी, इटली एवं जापान की एक धुरी बनी हुई थी जो इनके साथ संघर्षरत थे। रूस और जर्मनी की परस्पर छिड़ जाने के कारण विश्व भर के साम्यवादी फासिज्म और नाज़ीवाद के विरुद्ध हो गये।

आधुनिक काल में जनमत को अनुकूल बनाने का प्रमुख साधन प्रचार समझा जाता है और उस प्रचार की एक प्रमुख कड़ी है, साहित्य। रूसी प्रचार विभाग ने छोटी-छोटी कहानियों के अनेकों प्रचार-पत्र वितरित किये। साम्यवादी विचारों के भारतीयों ने भी उस प्रचार-कार्य में बहुत सहयोग दिया।

श्री प्रभाकर जी हिन्दी साहित्य के एक सम्मानित-प्रगति-शील आलोचक हैं। अपनी विचारधारा में साम्यवादी होने के कारण उन्होंने कितनी ही ऐसी कहानियां लिखीं जो फासिस्ट वाद के विरुद्ध घृणा उत्पन्न कर सके। इनकी ऐसी कहानियों

का संग्रह 'संगीनों का साया' निकला। इनमें कई तो रेखा चि॰ हैं और कुछ कहानियां। कथावस्तु विदेशी है और उसमें वर्णित विचारधारा एक सिद्धान्त विशेष का प्रचारमात्र कही जा सकती है। आहत विदेशी बन्धुओं के प्रति सौजन्य छलका पड़ता है। प्रत्येक कहानी आत्म-बलिदान का उज्ज्वल रूप प्रस्तुत करती है।

माचवे जी की प्रौढ़ भाषा, और सफल तथा मँजी हुई लेखनी का चमत्कार इन कहानियों में भी दिखाई पड़ता है। 'उगता सूरज डूबेगा' 'वार्सा ने कहा' तथा 'गुलामों की डायरी से' प्रभावपूर्ण कहानियाँ हैं।

श्री मोहनसिंह सेंगर—

नाजीवाद के बढ़ते हुये प्रभाव, प्रतिगामी एवं पराजय-वादी शक्तियों का आत्म-समर्पण, जर्मन-विभीषणों की मनः स्थितियों का चित्रण तथा जापान के विरुद्ध संघर्ष में संलग्न चीनी गुरिल्लों की झांकी इनकी कहानियों के आधार हैं। 'वागनर' और 'अन्त का आरम्भ' शीर्षक कहानियों में देशद्रोही जर्मनों का रूप अधिक स्पष्ट हुआ है। 'पीकिंग का भिखारी' स्वातन्त्र्य संघर्ष में प्राण की बाजी लगाने वाले चीनी युवकों का अद्भुत रूप प्रस्तुत करती है। 'कप्तान की मुसीबत' में स्वातन्त्र्य प्रिय एक अमेरिकन नागरिक की विश्व शान्ति के लिये उत्सुकता और बलिदान का अनुपम रूप अङ्कित हुआ है।

उक्त दोनों ही लेखकों की इन कहानियों में कल्पना का अधिक आश्रय लिया गया है। पूँजीवादी लोकतन्त्र एवं साम्राज्यवादी विचारधारा का कड़वा जल पीकर कृशगात भारत की मूर्ति आँखों से ओझल कर, अनुभूत नाजीवाद के भयानक

और उत्पीड़क स्वरूप को मूर्त करने में कल्पना का ही आश्रय लिया गया है। नाजीवाद को मानवीय सभ्यता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का शत्रु घोषित कर साम्राज्यवादी शासकों से सहानुभूति प्रकट करना कुछ अप्राकृतिक सा लगता है। भाषा और शैली के सौष्ठव के कारण ये रचनायें मनोरंजक और मधुर अवश्य बन गई हैं।

श्री श्रीनाथसिंह—

ये हिन्दी के बहुत पुराने पत्रकार, कहानी लेखक और उपन्यासकार हैं। ये यथार्थ का भावनात्मक रूप प्रस्तुत करने वाले प्रथम वर्ग के कहानी लेखकों में ही आयेंगे। इस वर्ग में ये द्वितीय प्रकार के कहानी लेखकों में से हैं, जिन्होंने युद्ध की घटनाओं से प्रेरणा लेकर भी किसी सिद्धान्त विशेष के प्रचार की अपेक्षा मनोवेगों को तरंगित करने का ही कार्य किया है। इनकी ऐसी कहानियों में 'वापसी' ली जा सकती है; जिसमें एक पोलैण्ड की वीर रमणी का काल्पनिक वृत्तान्त देते हुए उन भारतीयों की मनोवृत्तियों की भी एक झांकी दे दी गई है जो विदेशों से वापस आते हैं।

इनकी शेष कहानियों में जीवन संघर्ष के बहुमुखी चित्र, सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, त्याग, तपस्या और साधनापूर्ण जीवन की ओर संकेत दिखाई पड़ते हैं। भाषा सरल किन्तु आकर्षक होती है, एक पत्र-सम्पादक की तरह ही।

नवां वर्ग

वीर रस को परिपुष्ट करने वाले कहानी-लेखकों की संख्या नगण्य सी है। वैसे तो प्राचीन इतिहास (मुख्यतः

राजपूती काल) को लेकर अनेकों कहानियाँ लिखी गईं जिनमें त्याग और आत्मबलिदान के अद्भुत उदाहरण मिलते हैं किन्तु उनमें वीर रस के परिपाक की अपेक्षा वीरता का चित्रण अधिक है। हृदय में उत्साह का संचार करने वाली, भुजाओं में फड़कन पैदा करने वाली कुछ कहानियाँ श्री गणेश पाण्डेय ने लिखी हैं—

श्री गणेश पाण्डेय—

इनकी कहानियाँ देशभक्ति और वीर रस से सराबोर हैं। इनमें प्रेम और कर्त्तव्य का संघर्ष दिखलाकर कर्त्तव्य की विजय दिखलाई गई है। राष्ट्र हित के लिये व्यक्तिगत हित का बलिदान इनका आदर्श है। एक पत्नी अपने कायर पति को गोली का निशाना बना सकती है, एक माँ देशद्रोही पुत्र को दीवाल में चुनवाना पसन्द करती है। 'देश की आन पर' इनकी कहानियों का संग्रह है।

'आहुतियाँ' में देशी विदेशी दोनों प्रकार की वीर गाथायें हैं। देशी कहानियों में आदर्श वीरता का और विदेशी कहानियों में उद्दाम कर्त्तव्य निष्ठा का चित्रण है। 'वीर डोवर्न' अत्यन्त ही प्रख्यात और हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने वाली कहानी है। 'सहमरण' और 'प्रतिशोध' भारतीय वीरता का आदर्श रूप प्रस्तुत करती हैं। इनकी भाषा और शैली छात्रोपयोगी सरल है।

श्री राजबहादुरसिंह—

वीरता, दृढ़ता और ओज के प्रदर्शन के साथ-साथ त्याग, तपस्या और उत्सर्ग की उत्कृष्टतम भावनाओं को जाग्रत करने वाली राजपूत कालीन गाथाओं को आधार बनाकर इन्होंने भी

कुछ उत्कृष्ट श्रेणी की कहानियाँ लिखी हैं। 'वज्रघोष' और 'खून की होली' इनकी कहानियों के संग्रह हैं। 'मेरी भूमि' 'देशद्रोही' और 'प्रत्यावर्तन' उत्तम श्रेणी की कहानियाँ हैं। पाण्डेय जी की अपेक्षा इनकी भाषा-शैली प्रौढ़, परिमार्जित एवं व्यंग्योक्तियों से पूर्ण है।

दसवां वर्ग

शिकार सम्बन्धी कहानियाँ हिन्दी साहित्य में बहुत ही थोड़ी हैं। इन कहानियों में हृदय के धड़कन को बढ़ा देने वाली अद्भुत परिस्थितियों का सृजन होता है। भय की सृष्टि कर रोमांच कर देने वाली होती हैं, ये कहानियाँ। उपयुक्त वाता-वरण को प्रस्तुत कर भय की सिहरन उत्पन्न करने में समर्थ लेखक ही शिकार सम्बन्धी उत्कृष्ट कहानियाँ दे सकता है—

श्री श्रीराम शर्मा —

ये एक कुशल शिकारी हैं। हिंसक पशु मानव जीवन के शत्रु हैं, अतः उनके वध की कामना स्वाभाविक है। वे पशु भी मानव जाति से बदला लेने का शक्तिभर प्रयास करते हैं। मानव और हिंस्र पशुओं का संघर्ष, उनकी कुशल कूटनीतिक चाल, लुका चोरी आदि वे तथ्य हैं जिन पर इस प्रकार की कहानियाँ आधारित होती हैं। मृत्यु के मुख में पहुंचा शिकारी हृदय की धड़कन को चरमसीमा तक पहुँचा देता है पर उसकी साहसपूर्ण विजय अनायास ही उस भारी बोझ को हटा देती है जिससे पाठक का हृदय भाराक्रान्त रहता है।

इस प्रकार की कहानियां सर्व प्रथम इन्होंने ही हिन्दी साहित्य को दी हैं। 'शिकार' और 'प्राणों का सौदा' इनकी

कहानियों के दो संग्रह हैं। इनमें भयानक जंगली और जल-जन्तुओं के शिकार में उत्पन्न खतरों का प्रभावशाली चित्रण है। इनकी शैली में सबसे बड़ा दोष यह है कि इनकी पांच-छः कहानियों को पढ़ लेने के बाद पाठक के हृदय में औत्सुक्य की जागृति उसी प्रकार नहीं हो पाती। इसका प्रमुख कारण (theme) की समता है। कला की दृष्टि से ये कहानियाँ मध्यम श्रेणी की ही कही जायँगी, किन्तु पाठकों ने इन्हें पसन्द किया है।

श्री रघुवीरसिंह—

इन्होंने भी शिकार सम्बन्धी छोटी-छोटी कहानियाँ लिखी हैं। निजी अनुभूतियों ने इन कहानियों को प्राणवान् बना दिया है। भयानक कर्म में भी प्रकृति के रमणीय वर्णनों द्वारा पाठकों की मनोदशा को विचित्र बना देना इनकी विशेषता है। ये कहानियाँ लघु होने पर भी मार्मिक हैं। 'पेड़ पर चीते से मुलाकात' और 'नया शिकारी' सिहरन पैदा कर देने वाली कहानियां हैं। शैली आकर्षक एवं दृश्य चित्र प्रस्तुत करने वाली हैं। इनकी २१ कहानियों का संग्रह 'शिकार की कहानियाँ' प्रकाशित हो चुका है।

जासूसी कहानियां साहसिक कहानियों का दूसरा रूप प्रस्तुत करती हैं। किसी उलझी हुई समस्या को सुलझाने के लिये बुद्धि कौशल, साहस और धीरता का आश्रय ग्रहण करने वाले पात्र पाठकों के हृदय में अपने प्रति श्रद्धा जागृत कर लेते हैं; उनकी कठिन परिस्थितियाँ औत्सुक्य और संवेदना जगाती हैं। इस काल में जासूसी उपन्यासों का तो अन्य भाषाओं से अनुवाद भी हुआ और तिलस्मी तथा जासूसी मौलिक उपन्यास

लिखे भी गये किन्तु कहानियों का अत्यन्त ही अभाव है। इसके दो कारण हैं— प्रथम तो यह कि उलझनपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न कर उनके सुलझाव को चमत्कारपूर्ण रूप में उपस्थित करने से आकार बहुत बढ़ जाता है और द्वितीय कारण है कहानी लेखन की वह अद्भुत क्षमता जो इनके लिये आवश्यक है तथा जासूसी कथाकारों में से किसी में भी उपलब्ध नहीं है। श्री युगलकिशोर पाण्डेय ने कुछ कहानियाँ लिखी हैं पर उनकी भाषा शैली अत्यन्त ही निकृष्ट श्रेणी की है।

ग्यारहवां वर्ग

विकास सिद्धान्त एवं मार्क्सवादी विचारधारा के आधार पर इतिहास और जीवन को चित्रित करने वाले कहानीकार—

श्री राहुल सांकृत्यायन—

श्री राहुल जी प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने इतिहास एवं मानव विकास को कहानियों के रूप में प्रस्तुत किया। 'वोल्गा से गङ्गा' में इनकी २० कहानियाँ संगृहीत है। इनमें ६ हजार ईसा पूर्व से सन् १६४२ (सं० १६६६) के आन्दोलन तक के इतिहास का विहगावलोकन है। 'निशा' से 'अंगिरा' तक की कहानियों मे वे पाठकों को वोल्गा से गंगा तक पहुंचा देते है। आर्यावर्त का स्वरूप, मुस्लिम संस्कृति का सम्पर्क, अंगरेजी सभ्यता का प्रभाव और ६६ का संघर्ष, 'सुमेरु' शीर्षक कहानियों तक में चित्रित किया गया है।

आर्य सभ्यता के परिवर्तित रूप एवं मानव जाति की प्रगति को नवीन दृष्टिकोण से उपस्थित करना और कतिपय

अंध-परम्परा पर आघात करना ही इन कहानियों का उद्देश्य है।
जंगली जीवन, कृपक जीवन और नागरिक जीवन की आधुनिक
विकसित अवस्था तक के क्रमशः चित्र इनमें अङ्कित हैं।
कहानियों में एक आकर्पण है जो पाठकों को अपनी ओर खींचे
रखता है।

श्री नरसिंहचन्द्र जोशी—

विपय और शैली में आधुनिक कहानियों से सर्वथा भिन्न
कहानियां जोशी जी ने लिखी हैं। मनुष्य के सामाजिक जीवन
के क्रमिक विकास का चित्रण इन्होंने "ईश्वरः ऐतिहासिक
विकास" में किया है। शिकारी से पशुपालक तथा व्यक्तिगत
सम्पत्ति का स्वामी वनता हुआ मानव किस प्रकार सामाजिक
और सांस्कृतिक जीवन को वदलता हुआ अपने विश्वासों और
विचारों में भी सर्वथा भिन्न वन गया। आवश्यकता आविष्कार
की जननी है, स्वार्थ मूल राजा और राजसत्ता की प्रतिष्ठा तथा
आज के युग में ईश्वर के आगे प्रश्नवाचक चिह्न आदि वे तथ्य
हैं जिन पर इनकी कहानियाँ अवलम्वित हैं। भापा सरल,
स्वाभाविक तथा शैली उपदेशात्मक है। 'अपूर्ण' और 'तीन
धागे' कहानी-कला के अधिक समीप हैं।

श्री भगवतशरण उपाध्याय—

इन्होंने उक्त दोनों कहानीकारों से सर्वथा भिन्न उद्देश्य
रखते हुये, भारतीय परम्परा के अनुकूल सामाजिक विकास को
अपनी कहानियों में चित्रित किया है। ऐतिहासिक और सांस्कृ-
तिक विकास दिखलाना इन कहानियों का उद्देश्य है। वैदिक
काल से अशोक तक की सामाजिक स्थिति, आचार व्यवहार

को इन्होंने शैली की उत्कृष्टता, व्यंग्य आदि के प्रयोग तथा हास्य के छींटे जहां तहां देते हुए प्रस्तुत किया है। उपयुक्त वातावरण की सृष्टि इनकी कहानियों की विशेषता है और तर्क का अतिशय प्रयोग दोष; काल्पनिक तथ्यों एव घटनाओं को सत्य का सुन्दर आवरण पहनाने में ये सफल रहे हैं। 'राष्ट्रभेद' 'संघर्ष' और 'वैराग्य' में सामयिक परिस्थितियों का चित्रण अधिक सफल हुआ है।

बारहवां वर्ग

इस वर्ग में तुकान्त या अतुकान्त छन्दों में कहानियाँ प्रस्तुत करने वाले कलाकार आ सकते हैं। यद्यपि किसी घटना को आधार बनाकर कविता लिखने की प्रणाली प्राचीन काल से ही चली आ रही है, किन्तु उनमें काव्यगत गुण, कल्पना, अनुभूति और दृश्य विधान, संगीतमयता आदि आवश्यक हैं। इन कहानियों में वर्णन की प्रधानता होती है और प्रत्येक पंक्ति सलिल प्रवाह की तरह कहानी के लक्ष्य की ओर प्रवाहित होती रहती है। निश्चय ही पद्यबद्ध होने के कारण इनमें भी काव्य-गुणों का सर्वथा अभाव नहीं होता।

श्री जानकीवल्लभ शास्त्री—

इनकी गाथा में सामाजिक नग्नता का चित्रण करने वाली ऐसी ही सात कथाओं का संग्रह है। जीर्ण-शीर्ण मानवता के खोखले स्तम्भ और टूटती हुई रूढ़ियों की शृङ्खलायें चलचित्र की भाँति अङ्कित की गई हैं। "रूपमात्र तुम नारि! नहीं हो पहचानो अपने को' कहने वाले शास्त्री जी भी 'आदर्श लादने' की अपेक्षा यथार्थ का चित्र अङ्कित कर ही रह जाते हैं।

श्री विश्वम्भर 'मानव'—

इनकी 'निराधार' को भी इसी श्रेणी में रक्खा जा सकता है। इनकी कहानियों में मुक्त छन्द एवं आत्मचरित मूलक शैली अपनाई गई है। इनमें अतीत जीवन के स्मरणीय घटना प्रसंगों की अवतारणा की गई है।

तेरहवां वर्ग

कहानी और जीवन की अभिव्यक्ति पर्यायवाची शब्द हैं। किसी समय कविता में हृदय की भावनायें व्यक्त होती रही हों; आज तो मुख्य साधन कहानी ही है। विविध प्रकार के भाव, विचार कहानी में प्रकट होते हैं, उसकी अनेकों शैलियां हैं; आज हृदय की अनुभूतियां कहानी के सांचे में अधिक ढलती हैं। व्यस्त जीवन में मानव उससे बहुत कुछ पा लेता है, इसी के द्वारा दूसरों को बहुत कुछ देना भी चाहता है। इस वर्ग को उन विविध प्रकार की कहानी लिखने वाले कलाकारों का क्षेत्र मान लें जो जीवन के विशिष्ट अंगों को अलग-अलग झलका देने वाले हैं—

श्री व्यथित हृदय —

विवाह, जीवन की एक महान् किन्तु अत्यन्त ही मधुर घटना है। आज के भारतीय समाज में विवाह स्वयं समस्याओं का समूह बन गया है। जिस समय से माता-पिता को बेटे-बेटी के विवाह की चिन्ता होती है, उन समस्याओं से साक्षात् परिचय आरम्भ हो जाता है और विवाह के ये पात्र सामाजिक रूढ़िगत समस्याओं के शिकार बन जाते हैं। इनके दो

कहानी संग्रह हैं—'विवाह की कहानियाँ', 'सुहागरात की कहानियाँ'। सुलझे हुये विचार, मँजी हुई भाषा और रोचकता इनकी शैली की विशेषतायें हैं। इनकी कहानियों में सामाजिक समस्याओं का सच्चा चित्रण है। कला की दृष्टि से कांच की चूड़ियां, वेश्या पुत्री और कर्त्तव्य का मूल्य आदि सुन्दर कहानियां हैं।

श्री प्रो० सत्येन्द्र—

निर्वाचन, मताधिकार, ग्राम-सुधार और साक्षरता प्रचार आदि को लेकर इन्होंने भी कई कहानियाँ लिखी हैं। नागरिक जीवन का कर्त्तव्य ज्ञान कराने वाली ये कहानियाँ सोद्देश्य लिखी गई हैं; सम्भव है इसी कारण इनमें कला का रूप न निखर पाया। 'खण्डहर का उपदेश' और 'हठ का अभिशाप' जैसी कुछ सुन्दर कहानियाँ भी हैं जो कुछ देर के लिये प्रभाव सृजन में भी समर्थ हो जाती हैं। वातावरण एवं वस्तुस्थिति का चित्रण अच्छा बन पड़ा है।

चौदहवां वर्ग

हिन्दी साहित्य में अन्य भाषाओं से जितना कहानियों और उपन्यासों का अनुवाद हुआ उतना नाटक, कविता आदि का नहीं। अनुवाद के लिये भी एक विशिष्ट प्रतिभा की आवश्यकता है। भावों को सुरक्षित रखते हुये सम्पूर्ण रूप में उसी प्रकार का प्रभाव अनुवाद से भी उत्पन्न कर देना, जैसा कि मूल रचना से पड़ता है, एक बड़ी क्षमता है।

अनुवाद के तीनों ही स्रोतों—(अ) विदेशी, (ब) देश की अन्य भाषाओं; (स) संस्कृत से पर्याप्त कहानियाँ आईं और

इन्होंने कथा साहित्य को न केवल समृद्ध बनाया अपितु उसे प्रभावित भी किया।

संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियों को अनुवादित कराकर प्रकाशित करने का श्रेय सरस्वती प्रेस, बनारस एवं सम्पादक श्रीपतराय तथा उनके छोटे भाई को दिया जा सकता है। हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई ने भी बंगला के प्रतिष्ठित साहित्यिकों की कहानियों का अनुवाद प्रकाशित किया है।

बंगला से सफल अनुवाद करने वालों में श्री रूपनारायण पाण्डेय एवं धन्य कुमार जैन के नाम उल्लेखनीय है। शरत् और रवीन्द्र साहित्य का पूरा अनुवाद इन्होंने प्रस्तुत किया है। श्रीमती सन्तोष गार्गी ने मापांसा की कहानियों का अत्यन्त ही सफल और सुन्दर अनुवाद किया है जो 'प्रायश्चित' में संगृहीत है। श्री अशोक एम० ए० ने कथा-सरित्सागर की कुछ कहानियों को रूपान्तरित किया है। फारसी से रूमी की कहानियों का अनुवाद शिवदानसिंह शाण्डिल्य ने किया है।

उल्लिखित कलाकारों के अतिरिक्त कहानी-लेखकों की एक विशाल संख्या इस क्षेत्र को अपनी कला-कृतियों से भर रही है। इनमें श्री लक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी मुख्य हैं इनकी कृतियों (रानी का रंग, युगचित्र) में समाज के चित्र एवं पीड़ित एवं दलितों के प्रति सहानुभूति उपलब्ध होती है। दीनानाथ व्यास ने (जीवन की झलक) असहाय समाज की दयनीय परिस्थितियों को आधार बनाया है। 'फिल्मी कहानी' शीर्षक कहानी में 'फिल्मी जीवन का सजीव एवं व्यंग्यात्मक रूप प्रस्तुत करने वाले श्री नलिन जी, विविध पात्रों के चरित्रों एवं उनकी परिवर्तन शीलता को मार्मिकता से (उजाला में) चित्रित करने वाले श्री

अरुण, अतीत का वातावरण चित्रित करने वाली श्रीमती विपुला देवी, ग्राम्य एवं पहाड़ी जीवन के सरल एवं भोले रूप तथा भावनाओं को अङ्कित करने वाले श्री देवेन्द्र सत्यार्थी सामयिक समस्याओं को आधार बनाकर मनोवैज्ञानिक कहानी लिखने वाले श्री राजेन्द्र (शरणार्थी समस्या पर 'किनारा') रामप्रसाद विद्यार्थी, ब्रजमोहन गुप्त आदि उल्लेखनीय कहानीकार हैं।

पन्द्रहवां वर्ग

मार्क्सवादी विचारधारा के अनुकूल किसानों, दलित और पीड़ित मजदूरों तथा निम्नवर्ग की समस्याओं को आधार बनाकर उनकी दयनीय परिस्थिति चित्रित करने और इस प्रकार सहानुभूति एवं करुणा जगाने का प्रयास करने वाले कलाकारों को इस अलग श्रेणी में रक्खा जा सकता है। प्रथम वर्ग के कहानीकारों में यथार्थ के साथ भावुकता और कल्पना अधिक है, इनके साथ कठोरता और क्षोभ।

श्री पं० श्रीराम शर्मा—

जमींदारों के अत्याचारों से पीड़ित किसानों एवं दीन-हीन मजदूरों की करुण दशा का चित्रण इनकी कहानियों में किया गया है। शक्ति सम्पन्न और ओजपूर्ण भाषा में उन पर होने वाले प्रहारों और उत्पीड़नों का इन्होंने स्वाभाविक वर्णन किया है। गरीबों के हृदय की पवित्रता, उनकी धर्मभीरुता तथा ईश्वर विश्वास को सरल शब्दों में उपस्थित किया गया है। 'वालती प्रतिमा' इनकी इस प्रकार की कहानियों का संग्रह है।

ये कहानियाँ सभी रसों की हैं— सरल, सरस तथा सजीव भी हैं, किन्तु शोषक और शोषितों के संघर्ष को चित्रित करने में वे अस्वाभिकता की ओर झुक गये हैं, साथ ही उनके हृदय के निकले उद्‌गार ओजपूर्ण भाषा में होते हुये भी ऐसे लगते हैं जैसे इन उक्तियों को चरितार्थ करने के लिये ही वे दृश्य उपस्थित किये गये हों—

"एक आध रोटी ही वे लोग खा पाये होंगे कि एकदम चन्दा के मकान में बीसों आदमी भर गये। ये कुर्की वाले और जमादार के गुर्गे थे। भूखे कुटुम्ब के आगे से परसी थालियां पकड़ ली गईं। स्त्रियां एक ओर परसी थलियों को खींच रही थीं और दूसरी ओर से जमींदार के गुर्गे। भूख और नृशंसता में रस्साकस्सी थी, पीड़ित और अत्याचारी का युद्ध था।" उक्त दृश्य जैसे अन्तिम वाक्य के लिये ही हो।

श्री शौकत उस्मानी —

किसान और मजदूर आन्दोलन से सम्बन्ध रखने वाली कहानियाँ इन्होंने भी हिन्दी साहित्य को दी हैं। ये एक स्वयं साम्यवादी विचारधारा के व्यक्ति हैं तथा पीड़ितों और शोषितों के प्रति उनकी असीम सहानुभूति है। 'बाप का बदला' शीर्षक कहानी में सरकारी अफसरों की दासत्वपूर्ण मनोवृत्ति और चाटुकारिता, 'राधा' में स्वतन्त्र विचार रखने वालों की हिन्दू समाज में दुर्दशा, 'रुक्मिणी' में अनमेल विवाह की स्थिति को समाज के लिये हानिकर रूप में दिखाया गया है। भाषा चलती हुई एवं सजीव होने पर भी कतिपय स्थलों पर उर्दू के कठिन शब्दों का प्रयोग खटकता है। इनकी शैली गतिशील है और सामयिक

विचारधाराओं की रोचक अभिव्यक्ति हुई है। कहानियाँ पढ़ने में दिलचस्प हैं। 'अनमोल कहानियाँ' आदि इनके संग्रह हैं।

श्री राजेश्वरप्रसाद नारायणसिंह—

स्वतन्त्रता संग्राम के एक दृढ़ एवं कर्मठ सैनिक के रूप में इन्होंने स्वयं भी बहुत त्याग और बलिदान किया है। रूसी वीरों के त्याग और बलिदान को मूर्त करने वाली इनकी कहानियों का संग्रह सं० १९९७ में 'आजादी की कुर्बानियाँ' नाम से प्रकाशित हुआ। कहानी और जीवनी का सफल संयोग इन कहानियों की विशेषता है। रूसी क्रान्ति का पथ प्रशस्त करने वाले स्टेंक रेजिन, उदारता का अनुपम आदर्श-प्रस्तुत करने वाले अलेक्जेण्डर हुर्जेन, क्रान्ति का स्वप्न पूरा करने में दुर्दशा ग्रस्त सोनिया और सिनगव, जैसे जाज्वल्यमान पात्रों की चारित्रिक अभिव्यक्ति के साथ ही साथ मजदूरों को शिक्षित करने वाली सोफी, वेदना के मधुर गीत गुनगुनाने वाली वीरा फिगनर, अद्वितीय संगठन कर्त्री सोकी और साम्यवादी जमींदार प्रिन्स खिलकाफ जैसे व्यक्तियों के चरित्र भी रोचकता से अङ्कित किये गये हैं।

भाषा सीधी और सरल है किन्तु उसमें सांकेतिक प्रयोग कहीं-कहीं अस्पष्टता ला देते हैं।

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—

ये हिन्दी के अग्रणी प्रगतिशील कवि हैं। आपकी प्रारम्भिक कहानियां रोमांसपूर्ण थीं, किन्तु संवेदनशील कवि हृदय जीवन के प्रत्यक्ष सुख-दुःख की अनुभूतियों से कब तक परे रहता? देश के पीड़ित और दलित समाज की भयानक और

कारुणिक परिस्थितियों का अत्यन्त ही मार्मिक चित्र आपने खींचा है। भूख और दरिद्रता किस प्रकार की मानसिक विक्षिप्तता ला सकती है इसका सुन्दर रूप 'हत्यारा' शीर्षक कहानी में व्यक्त हुआ। रामदीन ने टीपू और बिंदिया की हत्या इसीलिये तो की कि वह उन्हें रोटी नहीं दे सका। भाषा गतिशील और भावानुकूल है। किन्हीं क्रान्तिमय विचारों के समावेश की अपेक्षा इनकी कहानियाँ केवल सहानुभूति और संवेदनशीलता ही उत्पन्न करती हैं।

इनकी कहानियों में नारी का विषम रूप और क्रान्ति का ध्वंसात्मक अंश ही अधिक है, रचनात्मक कम।

श्री रामवृक्ष बेनीपुरी—

श्री बेनीपुरी जी की भाषा शैली सर्वथा नवीन और अनूठी है। निकट से कृषक जीवन का उन्होंने अध्ययन किया है, उनकी समस्याओं से परिचय प्राप्त किया है और उसे ही अपनी रचनाओं में मूर्त किया है। इनकी कहानियों में कृषक जीवन के यथार्थ चित्र अवश्य हैं जो पाठकों के हृदय में सहानुभूति जगा दें, वेदना, करुणा और क्षोभ उत्पन्न करने की क्षमता का भी उनमें अभाव नहीं है किन्तु उन समस्याओं के हल एवं भविष्य के प्रति आशावादी दृष्टिकोण का अभाव सा है। 'पतितों के देश में' उनकी एक ऐसी रचना है जो कहानी, जीवनी और उपन्यास तीनों का ही मिश्रित रूप उपस्थित करती है। इसके दो भागों में से प्रथम में ग्रामीण रोमांस और द्वितीय में जेल-जीवन की कठोर यातनाओं के मार्मिक, करुणाजनक और हृदय हिला देने वाली घटनाओं का संकलन है। संवेदनशील हृदय की भावुकता का पूर्ण उपयोग किया गया है।

"बाबू जी ! वसन्त की दूती है कोयल, और उसका संदेश है कुहू। वर्षा की दूती है पपीहा और उसका संदेश है, पी कहां, कुहू और पी कहां—दोनों में प्रियतम की प्राप्ति की लालसा है।

श्री धर्मवीर भारती—

भूख, बीमारी और मौत के नग्न नृत्य का चित्रण करते हुये इन्होंने भी कुछ कहानियां लिखी हैं। वर्णनशैली में रोचकता है, भाषा और भाव में सुन्दरता। तथ्यपूर्ण आधार पर निर्मित है ये कहानियाँ; अतः प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ है। यथार्थ का चित्रण और सहानुभूति को जगाने का प्रयास इन कहानियों की विशेषता है। 'मुर्दों का गांव' इनकी कहानियों का संग्रह है।

यद्यपि इस काल में ही श्री यशपाल, अमृतराय और कृष्णचन्द्र आदि ने भी कहानियाँ लिखी हैं किन्तु प्रवृत्ति की दृष्टि से ये ही कलाकार इस समय कहानी क्षेत्र को नये विचारों से उर्वर बनाने का प्रयास कर रहे हैं, अतः इस काल में इनका परिचय न देकर प्रगतिशील कथा साहित्य के उत्तरार्ध के उन्नायकों में ही इनकी गणना अधिक उचित होगी। इस उत्तरार्ध का सन्धिकाल तो युद्ध के बाद ही प्रारम्भ हो गया था किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की समस्याओं ने गांधीवाद की असफलताओं को पूर्णतः सामने ला दिया है और प्रगतिशील साहित्य का द्वितीय रूप—विक्षोभ और असन्तोष को अधिक प्रज्ज्वलित कर क्रान्ति पथ पर आगे बढ़ाने वाला बनकर सामने आ गया है।

प्रगतिशील युग की प्रवृत्तियां—

यथार्थ की साधना में सर्वप्रथम प्रवृत्त होने वाले कलाकार श्री प्रेमचन्द जी थे। उन्हीं की प्रेरणा से प्रगतिशील लेखक-संघ की स्थापना हुई और साहित्य क्षेत्र में प्रगतिवाद की नींव पड़ी। कोई भी विचारधारा बिना दार्शनिक पृष्ठभूमि के टिकाऊ नहीं बन सकती। अतः संवत १९८५ के बाद लिखी गई कहानियों की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर विचार कर लेना आवश्यक है।

इस युग को प्रभावित करने वाले पाश्चात्य दार्शनिकों में एमिल जोला, फ्रायड और मार्क्स प्रमुख हैं। भारतीय परम्परा में गांधी दर्शन का सबसे अधिक प्रभाव रहा। प्रकृतिवाद का प्रवर्त्तक एमिल जोला कहता है—

"मेरी केवल एक इच्छा थी, यदि एक मनुष्य स्वस्थ और हट्टा कट्टा है और एक स्त्री अतृप्तकाम है तो उसमें पशुत्व ढूंढना ही मेरी कला की परिणति है।"

फ्रायड ने सेक्स के आधार पर मनोविश्लेषण को कला का प्रमुख साधन माना, सिर्फ साधन साध्य नहीं।

मार्क्स ने मानव विचार को Actiue Historical agent कहा। उसकी दृष्टि में समाज के क्रम विकास में मनुष्य सक्रिय भाग लेता है। जीवन के प्रति ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ-साथ उसने भौतिकता और सामाजिकता को प्रधानता दे दी। ईश्वर, धर्म और भाग्य का विरोध करने का मुख्य कारण था भौतिक कारणों पर मनुष्य का ध्यान केन्द्रित करना। आर्थिक वैषम्य को जीवन की सम्पूर्ण कठिनाइयों का कारण मान कर उसने शोषकों के प्रति विद्रोह की ओर जनता

को उन्मुख करना प्रगति का चिह्न बतलाया और विचारों की क्रान्ति के लिये साहित्य को उसका साधन।

गांधी दर्शन का व्यक्त रूप सर्वोदय है, वह भारतीय दर्शन के अनुकूल आत्मा की अमरता और ईश्वर की सत्ता को अस्वीकृत न कर अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा मानव की प्रगति में विश्वास रखता है। युग निर्माण के लिये वह आदर्शों में संशोधन कर सकता है, आमूल परिवर्तन नहीं। इन्हीं दार्शनिक विचारों का प्रभाव इस युग में न केवल कहानियों पर अपितु साहित्य के अन्य अंगों पर भी परिलक्षित होता है।

आध्यात्मिकता को सुरक्षित रखते हुए भी गांधी दर्शन धर्म के बाह्य रूप को नष्ट होने से न बचा सका। युग धर्म की पुकार के आगे परम्परागत धर्म अपनी उतावली में नग्न हो गया। परिणाम स्वरूप त्रिवर्ग की सिद्धि में अर्थ और काम, द्विवर्ग की सिद्धि ही आज के युग मानव का साध्य बन गई। उक्त पाश्चात्य दार्शनिकों की विचार परम्परा द्वारा इन्हीं दोनों के नियमित और सम वितरण की मांग सभी जगह फैल गई और साहित्य ने इसी युग भावना को वाणी दी। अर्थ और काम के रूप में ऐहिक सुख की उपलब्धि की ओर उन्मुख करने वाला साहित्य ही प्रगतिशील कहलाया।

इस समय साहित्य युग की परख के लिये तीन आधार ग्रहण किये जा सकते हैं—(अ) प्रवृत्ति या जीवन के प्रति दृष्टिकोण, (ब) गतिशीलता, (स) अभिव्यक्ति की शैली।

व्यक्तिगत विचारों के प्रचार तथा जीवन की पार्थिव समस्याओं के स्पष्टीकरण के कारण प्राचीन रूढ़ियों से निर्मुक्त

होकर नवीन माँसल आदर्शों के निर्माण की ओर युग की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। विकास के लिये प्राचीनता से विद्रोह और नवीनता के निर्माण में साहित्य गतिशील है। यह नवीनता दलित और पीड़ित की भावनाओं को मुखरित करने में और बाधक प्राचीन को नष्ट करने में दिखाई पड़ती है। सैद्धान्तिक भिन्नता के कारण प्रगतिशीलता के दो रूप बन गये हैं। गांधी दर्शन से प्रभावित प्रगतिशीलता में स्वतन्त्रता प्राप्ति, राजाओं का विरोध, जाति भेद का उन्मूलन, स्त्री और पुरुष के बीच समानता तथा अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा धनी और गरीब के भेद को मिटाना आदि आ गया; किन्तु इस प्रगतिशीलता में प्रतिक्रियावादियों को उत्सन्न करने की प्रभावशाली प्रणाली का अभाव है, अतः नवीन आदर्शों पर नव समाज का निर्माण करने वाले कलाकार अधिक प्रगतिशील कहलाये। इस काल में गांधीवादी विचारधारा के कलाकार सर्वदा झगड़ते रहे कि उन्हें अप्रगतिशील क्यों कहा जाता है।

वास्तविक प्रगतिशीलता क्या है? यह निश्चित है कि युगधर्म के रूप में आने वाला प्रत्येक विचार प्रगतिशील होता है, उसमें मानव-चेतना को सन्तोष और सुख देने वाली शक्ति निहित रहती है किन्तु आने वाले कल के लिये वे ही विचार पुरातन बन जाते हैं, यदि वे नये विचारों के प्रचार में बाधक हुये तो उन्हें प्रतिक्रियावादी की उपाधि प्राप्त हो जाती है। नवीनता में, बन्धन बनते हुये संस्कारों की ओर तीव्र असन्तोष और अश्रद्धा उत्पन्न होती है, उनके प्रति एक कटु विरक्ति होती है जो संघर्ष की भूमिका प्रस्तुत कर देती है।

यदि यह सम्भव है कि पुरातनता बन्धन बन जाय, तो नवीनता उच्छृङ्खल भी हो सकती है, एक भार से बोझिल तो दूसरी छिछली भी। यदि यह आवश्यक है कि एक प्रगति-विरोधी न बने तो उससे भी अधिक आवश्यक है कि दूसरी अर्थ-विहीन निष्फल प्रदेश की ओर न खींच ले जाय। क्रान्तिवादी और प्रगतिवादी पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। श्री प्रभाकर माचवे के शब्दों में सच्ची प्रगति वह है जो— 'व्यक्ति को संस्कारों से, समाज को रूढ़ियों से, राष्ट्र को अर्थदास्य से मुक्त कर विकास की ओर बढ़ाती चले।'

यथार्थ का चित्रण प्रगतिवादी के लिये आवश्यक है, इसी के द्वारा वह शोषित वर्ग में स्वाभिमान की जागृति, अधिकारों की चेतना और शोषक के प्रति प्रतिकार की भावना उत्पन्न कर सकता है। यथार्थ का चित्रण दो प्रकार से हो सकता है— (१) संदेश विहीन, वास्तविक स्थिति एवं तथ्यों का कलात्मक अङ्कन, (२) भविष्य के लिये आशा का संदेश देते हुए यथार्थ का चित्रण। गोर्की के शब्दों में प्रथम को कोरा यथार्थवाद और द्वितीय को समाजवादी यथार्थवाद कहा जायेगा, प्रथम प्रकार की रचना तभी प्रगतिशील कहलायेगी जब वह दलितों और पीड़ितों के प्रति यथार्थ चित्रण द्वारा सहानुभूति उत्पन्न करने में समर्थ हो।

यदि इस काल के कहानी साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तो कुछ सीमित रचनाओं को छोड़कर प्रथम प्रकार का ही यथार्थवाद उपलब्ध होता है, जिसे पाठकों के हृदय को संवेदनशील बनाकर दलितों के प्रति सहानुभूति प्राप्त करने के कारण

ही प्रगतिशील कहा जा सकता है। इस बात में मार्क्स की साम्य और अर्थदृष्टि तो हिन्दी कहानीकारों ने पकड़ ली पर आत्मा की सत्ता को सर्वथा अस्वीकृत करने का बल उनमें नहीं दिखाई पड़ता। फ्रांस और रूस के सन्धि युग (क्रान्ति के पास) के समान ही यहां की भी परिस्थिति रही, अतः सामयिक क्षणिकता के चित्रण को ही प्रधानता प्राप्त रही। असन्तोष के प्रखर मध्याह्न में वातावरण की उष्णता अवश्य है, परिस्थितियों के संघर्ष और विकास में चंचल दृष्टिकोण भी, किन्तु दृष्टि केन्द्रित करने के लिये लक्ष्य का अभाव है। राष्ट्रीय चेतना जाग्रत है, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य से आगे बढ़कर अन्धकार में कुछ टटोलने की उत्सुकता भी है। जन साधारण की रुचि अभी बना नहीं थी, किन्तु भावमय साहित्य सामान्य जन-जीवन से भी तैयार हो सकता है केवल अभिजात और उच्च मध्यवर्ग से ही नहीं, यह कहानीकारों ने समझ लिया था।

यथार्थवाद का चित्रण करने वाले इन कलाकरों के दो मुख्य वर्ग हैं—प्रथम वर्ग में वे कलाकार आयेंगे जिनमें राष्ट्रीय चेतना अधिक सजग है, प्रथम और अन्तिम वर्ग के सभी कहानीकार इसमें आ जायेंगे; इनमें गांधीवादी भी हैं, समाजवादी और साम्यवादी भी। द्वितीय प्रकार के यथार्थवादियों में अन्तः प्रतिक्रिया और विद्रोह के सांकेतिक रूप चित्रण की अपेक्षा मांसल और बाह्य शरीर के चित्रण की अधिकता है। अधिकांश प्रेम और सेक्स समस्या को आधार बनाकर कहानी प्रस्तुत करने वाले कलाकार हैं; इनका उद्देश्य है कला में नैतिक मूल्यांकन को नवीन दृष्टिकोण देना, विवाह तथा लौकिक सम्बन्ध में उदारता का प्रसार करना; उदाहरण के लिये नरेन्द्र

की 'शीराजी' शीर्षक कहानी ली जा सकती है, इसमें भूखी वृत्ति और यौन सम्बन्धों की विषमता का चित्रण होते हुए भी दृष्टि-कोण की स्वस्थता झलकती रहती है।

इस नग्न यथार्थ के भी दो रूप हैं, एक प्रकार के चित्रण में बेबसी और लाचारी का दर्शन है तो द्वितीय में विलासिता का, प्रथम प्रकार की कहानियों का उद्देश्य बेबसी और लाचारी के प्रति संवेदनशीलता और करुणा उत्पन्न करना है तो दूसरी का घृणा। करुणा और घृणा संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार करती है—इस युग की देन यही है, यही इस युग की प्रगतिशीलता है। सामान्य जनता की क्षोभ, पीड़ा, व्यथा, अवसाद आदि भावनाओं को अनुरंजित कर, कभी यथार्थरूप में, कभी व्यंग्य तथा उपहास के रूप में अङ्कित किया गया है। यथार्थवाद की यह मानवी झलक एवं मनुष्यता की पदर्थित विभूतियों का चारुचित्र दर्शन इस युग की कहानियों में बड़ी विशदता से सुलभ हो सकता है।

यथार्थवाद के चित्रण में संलग्न इस युग के अधिकांश कहानीकार मध्यम वर्ग के हैं; सामान्य और निम्न वर्ग के चित्रण के लिये उन्हें कल्पना की ही शरण लेनी पड़ी है। कल्पना-प्रसूत साहित्य के लिये विद्वत्ता की कम अनुभूति और कल्पना की अधिक आवश्यकता पड़ती है, यह अनुभूति संवेदनशील हृदय की काल्पनिक अनुभूति होती है। विदेशों में प्रगतिशील साहित्य का दृष्टिकोण मूलतः बौद्धिक है; परन्तु उक्त कारण से ही कहानी (साहित्य के अन्य अंग भी) भाव प्रवणता को नहीं छोड़ सकी हैं।

कला की रचना भाव के धरातल पर ही होती है; इस धरातल के निर्माण में सौन्दर्य दर्शन का रस आवश्यक है; किन्तु कला का सर्जनात्मक रूप तभी निखर सकेगा जब उसमें सत्य और शिव की भी अभिव्यक्ति हो। कहानियों की इस ठोस भावात्मकता के ही कारण उनमें निजत्व (भारतीयता) सुरक्षित रह गया है और पश्चिमी तूफ़ान के सामने भी वे भारतीय रस-वाद से एकता स्थापित कर सकीं। रस का कुशल परिपाक ही मनोरंजक हो सकता है। कल्पना और भावुकता का मोहकरूप प्रस्तुत करने वाले कहानीकारों, 'वियोगी', उपादेवी और कमला-कान्त वर्मा, की कहानियों में क्या युग-वाणी नहीं है ? सच तो यह है कि मनुष्य स्वप्नों को पाथेय बनाकर ही जीवन पथ पर अग्रसर होता है; इनकी रचनाओं में भी युग की वाणी है, परन्तु कल्पना के आश्रय में, उसके झीने आवरण में छिपी हुई।

प्रगतिवादी अन्तः की अपेक्षा वहिः प्रवृत्तियों की ओर अधिक उन्मुख रहता है, अतः वस्तु दर्शन से रोमांस की समाप्ति आवश्यक है। गत युग का दृष्टिकोण था भावुकता और कल्पना प्रधान, किन्तु इस युग की कलात्मकता यथार्थ पर भावना का रंग चढ़ाने में लगी रही। प्रथम युग में प्रसाद जी ने कल्पना और भाव प्रवणता दी, प्रेमचन्द जी ने विवेक और नीतिवादी दृष्टिकोण। इस युग में जैनेन्द्र ने गांधीवादी आध्यात्मिकता, अज्ञेय ने वैज्ञानिक और बौद्धिक विचार-शृङ्खला तथा भगवतीचरण वर्मा ने आस्तिक प्रवृत्तिवादिता। अज्ञेय की कहानियां किसी सीमा तक विकासोन्मुख रहीं।

इस काल में कहानी साहित्य भी जीवन की भांति ही व्यापक और बहुमुखी बन गया। अनेकों प्रकार की कहानियां

लिखी गईं . चेतना की प्रत्येक प्रकार की अनुभूतियों को कहानियों में अभिव्यक्ति मिली। प्रसाद जी के बाद और जैनेन्द्र के पूर्व ही कहानी की बाह्यरूप रेखा निश्चित हो चुकी थी, अतः टेकनीक में नवीनता और प्रगति शिथिल है। वैसे तो प्रगतिवादी कहानी में भाषा और टेकनीक का सीधा और सच्चापन ही मुख्य है, किन्तु लाक्षणिक प्रयोगों की बहुलता, व्यंग्य और हास्य का पुट (अश्क की कहानियों में), मनोविश्लेषण और रूप चित्रण की ओर झुकाव (अज्ञेय की कहानियों में) इस युग की विशेषता रही। जड़ वस्तुओं को पात्र मानकर 'पगडण्डी' जैसी कल्पना प्रधान कहानियां भी लिखी गईं।

भारतीय जीवन की गम्भीर दार्शनिक पृष्ठभूमि हास्य के लिये अधिक उर्वरा नहीं है। विकृत वाणी, आकार चेष्टा, वेषभूषा आदि के द्वारा हास्य उत्पन्न करने की परम्परा से भिन्न, हास्य जनक घटनाओं की कल्पना कर हास्यास्पद परिस्थिति उत्पन्न कर देना इस युग की नवीनता रही। शिक्षार्थी, अमृतलाल नागर, जोशी आदि की कहानियां इसी प्रकार की हैं। मिर्जा अजीमबेग चगताई की हिन्दी कहानियों में भी रस्साकस्सी आदि कहानियां परिस्थिति जन्य हास्य ही उत्पन्न करती हैं। शुक्ल जी की कहानियों में अद्भुत चेष्टाओं की प्रधानता है, जबकि अन्नपूर्णानन्द, राधाकृष्ण और 'बेढब' जी की कहानियों में व्यंग्य, वक्रोक्तियों और पात्रों के नाम के लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा भी हास्य की सृष्टि की गई है। हास्य रस की परिपक्वता के लिये केवल वाग्विदग्धता ही पर्याप्त नहीं है, घटना जन्य परिस्थितियों और भाषा के चमत्कारपूर्ण समन्वय से ही उच्चकोटि का हास्य उत्पन्न हो सकता है।

प्रचार सम्बन्धी कहानियां सीमित हैं और उपदेशपूर्ण कहानियां नगण्य। कहानी एक निरपेक्ष, परिवर्तन हीन स्थविर चीज नहीं है, वह कला है, अतः विकासशील। प्रत्येक कलाकार स्वतन्त्र व्यक्तित्व और शैली रखता है; सैकड़ों कहानियां लिखने वाला कलाकार न तो वाह्य रचना के ही सैकड़ों रूप प्रस्तुत कर सकता है न प्रत्येक में टेकनीक की नवीनता ही, किन्तु वह अपने दृष्टिकोण में सतत परिवर्तन कर सकता है, जीवन के एक ही अंग को, व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को, अनेक प्रकार से देख सकता है और अपनी कला में उसको मूर्त कर सकता है; यही कहानी है और यही उसकी विकासशीलता। सुदर्शन जी को प्रेमचन्द के वाद सवसे अधिक ख्याति मिली, किन्तु उनके साथ ही कौशिक, चतुरसेन शास्त्री आदि प्राचीन परम्परा में रह कर नवीन कुछ भी नहीं दे पाते।

स्वयं इस युग के कलाकारों में भी जैनेन्द्र और पहाड़ी मुख्यतः तथा अज्ञेय अपनी कला के विकास में अंशतः शिथिल दृष्टिगोचर होते हैं। वेकारी की समस्या, वैवाहिक वैषम्य मध्य-वित्तिय वर्ग की दुर्दशा, किसानों की दयनीय स्थिति, प्रेम में वन्धन, जाति और समाज-व्यवस्था की जड़ता आदि वर्णन का विषय रहीं और इन्हीं का चित्रण होता रहा, भावनाओं की पालिस से चमका कर। प्रसाद और प्रेमचन्द दो स्तम्भ थे प्रथम युग के, जैनेन्द्र और अज्ञेय दो हैं इस युग के। इन्हीं चारों के सहारे कहानी की इमारत तैयार हुई है।

यद्यपि श्री यशपाल, अमृतराय, किरणचन्द, सौनरिक्शा आदि ने भी इस काल में, कहानियां लिखी हैं और उनकी कहा-

नियां कलात्मक उत्कृष्टता में किसी से कम नहीं हैं, किन्तु वे एक सजग कलाकार हैं और उनकी कहानियां उस दिशा की ओर संकेत करती हैं जो प्रगतिशील कहानी साहित्य की नवीनतम प्रवृत्ति कही जा सकती है, अतः नवीनतम प्रवृत्ति के उन्नायकों में उन्हें रखना अधिक उचित है।

साहित्य केवल समाज का प्रतिबिम्ब नहीं होता, प्रेरक भी होता है। युद्ध के प्रारूप, तज्जन्य परिस्थितियां और उपस्थित समस्याओं के चित्रण के अतिरिक्त पूँजीवादी व्यवस्था का अभिशाप, उससे पीड़ित मानव की जीवन व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं का निदर्शन करती हुई भी इस युग की कहानी निश्चित दिशा नहीं स्थिर कर पाई है; इसके व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही कारण हैं; जीवन की अनिश्चयता, आतङ्कपूर्ण परिस्थिति और वर्तमान समाज व्यवस्था के कारण, एकता, सहृदयता और आत्मीयता के अभाव में कलाकार की सजग आत्मा अर्धमूर्च्छित पड़ी रही है अतः दार्शनिक विश्लेपण और अनुभूति की गहराई होते हुए भी जीवन के प्रति निश्चित दृष्टिकोण का अभाव है। अधिकांश कहानीकारों में सजग चेष्टा का अभाव है और उनकी एक के बाद एक लिखी गई कहानियों में पिष्टपेषण मात्र ही है।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति और स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बीच के काल में सम्पूर्ण देश-समाज, प्रसव-वेदना से पीड़ित सा रहा। स्वतन्त्रता की सत्ता मिली गांधीवादी कांग्रेस को। स्वतन्त्रता की प्राप्ति गांधीवाद की सफलता की पराकाष्ठा थी। उसके बाद ही उसने असफलता के क्षेत्र में प्रवेश किया और उसकी प्रगतिशीलता का वेग पूर्णतः समाप्त हो गया। सैकड़ों

समस्याओं के संघर्ष में गांधीवाद अतीत का याद कर चीख उठता है किन्तु उसके दुर्बल हाथों में इतनी क्षमता नहीं है कि वह अपने सपनों को साकार बना सके, उसके लड़खड़ाते पैरों में इतनी शक्ति नहीं है कि प्रगति की दौड़ में साथ-साथ रह सके, अतः अपनी असमर्थता में उसने पूँजीवाद का पल्ला पकड़ा है; वह सर्वोदय के पक्ष में है—किन्तु वाणी से। अपने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में प्रेमचन्द जी ने गांधीवाद की पूर्ण पराजय की भविष्य वाणी कर दी थी। सभी समस्याओं को ज्यों का त्यों छोड़कर उन्होंने किसी निश्चित दिशा की ओर संकेत भी नहीं किया। गांधीवाद के साहित्यिक प्रवक्ता होने के कारण वे उसकी गहराई तक पहुंच चुके थे।

प्रवृत्ति की दृष्टि से यह युग गांधीवादी जैनेन्द्र और आतंकवादी अज्ञेय का ही रहा, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कोरे यथार्थ के चित्रण की अपेक्षा दिशा निर्दिष्ट करने वाली समाजवादी यथार्थवाद की ओर उन्मुख कहानियां ही उत्तरार्ध का आरम्भ करती हैं।

इस काल में विविध विषयों पर कहानियां लिखी गईं। सचेतन मानव के अतिरिक्त पशु ('शिकार' में) पक्षी ('कोटर और कुटीर' में) तथा जड़ पदार्थ ('पगडण्डी') भी कहानी के पात्र बने। चरित्र चित्रण में रूप विधान और मनोविश्लेषण की प्रधानता रही। शैली में—प्रथम युग में प्रयुक्त प्रणालियों के साथ ही साथ अन्योक्ति और आत्म-चरित प्रणाली में कुछ नवीनतम प्रयोग हुये। असम्बद्ध घटनाओं को एक साथ रखकर भाव विशेष के सृजन करने का प्रयास किया जाने लगा। ('कामकाज'

में) भावात्मक कहानियों की प्रमुखता रही। जीवन के समीप आने पर भी केवल यथार्थ का प्रभावशाली चित्रण ही कहानियों का उद्देश्य रहा। जिस प्रकार एक सरिता अपने उद्गम स्थान के समीप अधिक गतिशील और स्वच्छ रहती है, किन्तु खुले मैदान में आते ही उसकी धारा में विस्तार हो जाता है और गति शिथिल हो जाती है, उसी प्रकार इस युग में कहानी साहित्य भी जीवन के व्यापक क्षेत्र में आकर विस्तृत तो हुई पर गतिशील न रह सकी।

प्रगतिशील कहानी साहित्य (उत्तरार्ध)

स्वतन्त्रता प्राप्ति (सं० २००४) के पश्चात्

कोरा मनोरंजन करने वाली संदेशविहीन कला अमरता नहीं प्राप्त कर सकती। प्रगतिवादी साहित्य भी केवल यथार्थ का चित्रण मात्र कर चिरजीवी नहीं हो सकता, उसका अर्थ है समाज में सौम्य, संस्कृत भावनाओं की सृष्टि करके साहित्य और जीवन के विच्छेद को समाप्त करना। पूर्वार्ध की प्रगतिशीलता थी भारत-भूमि को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त करना विद्रोहात्मक और आतंकवादी साहित्य को कहानियों में पर्याप्त प्रश्रय देना। आज का जीवन स्वतन्त्रता संघर्ष से भी अधिक जटिल बन गया है; जीवन की सीमित आवश्यकतायें भी पूरी नहीं हो पातीं। शरणार्थी समस्या सामयिक है उसे भी आधार बनाकर श्री राजेन्द्र, देवीदयाल जी आदि ने सुन्दर कहानियां लिखी हैं पर उनका उद्देश्य भी सहानुभूति जाग्रत करना मात्र है। मुख्य समस्या है जीवन निर्वाह की, सड़ी-गली व्यवस्था की जगह पूर्ण एवं सन्तुष्ट समाज के निर्माण की। एक श्रेष्ठ

कलाकार, सामाजिक जीवन की सच्ची समस्याओं का एक सजीव किन्तु काल्पनिक चित्र देकर उनके समाधान की दिशाओं की ओर संकेत कर देता है।

कहानी, साहित्य का वह अंग है जो वाह्य वास्तविकता को गतिशील रूप मे उपस्थित कर हमारी पकड़ की सीमा में ला देती है; कलाकार की अन्तर्भेदिनी दृष्टि ही उसके रहस्यों का परिचय करा सकती है, जिससे हम अधिक भावात्मक या आध्यात्मिक दृढ़ता और व्यापक चेतना से संघर्ष करके अपने अनुकूल वना सकें। अवरुद्ध जन-भावना की गङ्गा को अवतरित करने के लिये आज तपनिरत, सजग, सचेत और दृढ़ भगीरथ जैसे कला-साधकों की आवश्यकता है। यद्यपि अपनी परिस्थितियों की सीमा में बँधा कलाकार, वह मुक्त संदेश नहीं दे पा रहा है परन्तु फिर भी निम्नलिखित कलाकार समाजवादी यथार्थवाद की ओर उन्मुख अवश्य हैं—

श्री यशपाल —

श्री यशपाल जनवादी कलाकार हैं। प्रगतिशील युग के पूर्वार्द्ध में भी, भारत की दरिद्र, अभिशप्त जनता के हाहाकार और चीत्कार ने उनके प्राणों में मर्मान्तक टीस पैदा की है और उत्तरार्द्ध के इस गणतन्त्र युग में भी 'जो इस समय एक प्रकार की अस्वस्थता मालूम हो रही है' विपाक्त और घुटनपूर्ण वातावरण से पीड़ित और परेशान मानवता को बाहर निकालने में उनका कलाकार प्रयत्नशील है। इस युग में प्रत्येक व्यक्ति एक शक्तिशाली विद्रोही है, राष्ट्र एवं समाज की परिस्थितियों से विवश वह छटपटा रहा है।

यशपाल ने समाज की उभरती हुई शक्तियों और परिवर्तित परिस्थितियों को पहचाना है। अपनी व्यंग्यपूर्ण और तीखी शैली द्वारा जनता की अन्तः भावनाओं को व्यक्त करते हुए उन्होंने जीवन की सामाजिक एवं आर्थिक असंगतियों पर मर्मान्तुद प्रहार किया है, पतनोन्मुख समाज एवं सड़ी-गली जर्जर संस्कृति की विकृति को दृष्टिपथ में ला दिया है।

यद्यपि सामाजिक संघर्षों की चोट ने यशपाल की भावनाओं को विक्षुब्ध कर दिया है किन्तु वे अतीत गौरव पर गर्व भी करते हैं और कुशल कलाकार की भांति नवीन भाव सौन्दर्य के लिये उन्हीं कल्पना चित्रों का प्रयोग करते हैं जो जनता की चेतना का संस्कार बन चुके हैं। 'दास धर्म' आदि ऐतिहासिक कहानियों में कल्पना और भाव की छटा भी सघन दिखाई पड़ती है। विश्व अथवा देश में फैले हुए अनाचार, ढोंग, स्वेच्छाचारिता और दमन से प्रभावित उनके सहृदय हृदय की भावनायें ही उनकी कहानियों में व्यक्त हुई हैं; उनमें सामाजिक विद्रूपता भी है, साहित्यिक सौन्दर्य भी, क्रान्ति की ज्वाला भी है और निर्माण का जल भी।

प्रसिद्ध रूसी कलाकार चेखव की दृष्टि में उत्कृष्ट मानव-समाज की रचना तभी सम्भव है जब कि व्यक्ति का सामाजिक एवं नैतिक स्तर पर्याप्त उन्नत हो और वह व्यक्तिगत सुख-दुःख को वर्ग-भेद मिटाने में लगा दे। गोर्की का कहना है कि साहित्य ही वह साधन या प्रमुख अस्त्र है जो उत्पीड़ित और शोषित वर्ग में पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति घृणा उत्पन्न कर सकता है। यशपाल की कलात्मक कृतियों में दोनों ही दृष्टिकोणों का समन्वय दिखाई पड़ता है और वे संत्रस्त तथा पीड़ित मानवता को आन्तरिक

जागरूकता का प्राणवान संदेश देते हैं; श्रमिक वर्ग की शक्तिशाली आवाज बुलन्द करते हैं और संकीर्णता से परे व्यावहारिक दृष्टिकोण को व्यापक बनाने का आदर्श उपस्थित कर रहे हैं।

यशपाल की प्रथम कहानियों का संग्रह 'पिंजरे की उड़ान' सं० १९९७ में ही निकल चुका था; उसकी कहानियों में यथार्थ पर कल्पना का रंग अधिक गहरा है। 'अभिशप्त' संग्रह की कहानियों में 'अप्रत्यक्ष की अपेक्षा प्रत्यक्ष में विश्वास कर जीवन की इच्छा और अधिकार के लिये व्याकुल होने' की प्रेरणा दी गई है। 'दास धर्म' और 'काला आदमी' जैसी कहानियों में गुलामी का अभिशाप नग्नरूप में चित्रित हुआ है। 'वो दुनिया' संग्रह की कहानियों में दर्द भरा संगीत भी है, परिस्थितियों का विद्रोह भी, और साथ ही आने वाली दुनिया की स्वर्णिम आशा भी। उस दुनिया में इन कहानियों में दीख पड़ने वाला जीवन का वैषम्य न होगा। इनमें यथार्थ की अपेक्षा कला का रूप अधिक है। 'ज्ञान-दान', 'तर्क का तूफान' और 'भस्मावृत चिनगारी' में संघर्ष के विविध रूप प्रस्तुत किये गए हैं। अन्तिम संग्रह में चित्रण का विषय है, मृत्यु की यातना सहता हुआ नर कंकाल और उसकी जर्जरित सामाजिक अवस्था। इसकी 'साग' शीर्षक कहानी १९९९ के स्वातन्त्र्य संग्राम की जन-भावना को पूर्णतः प्रतिबिम्बित करती है।

'फूलों का कुर्त्ता' में परम्परागत संस्कार से ही नैतिकता और लज्जा की रक्षा करने वाले समाज की उघड़ जाने वाली और भी नग्नता का चित्रण है। पुरातन संस्कारों को छोड़ नये युग की नई संस्कृति को अपनाने का ही इसमें संदेश है। 'खुदा

की मदद', 'भवानी माता की जय' आदि कहानियों में मजदूर के लिये अमर सन्देश है।

'धर्म युद्ध' अभी सं० २००७ का प्रकाशित उनका कहानी संग्रह है। धर्म और युद्ध को अन्योन्याश्रयता और अन्तर्विरोध का चित्रण है, इन कहानियों में। प्रत्येक कहानी अपने प्रभाव सृजन में बुद्धि की ओर झुकाव प्रस्तुत करती है। "मानवता की पुरातन धारणायें भौतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं पर भी प्रभाव डालती हैं; आज की पूँजीवादी व्यवस्था के भौतिक और आर्थिक पहलुओं की अपेक्षा उन पुरानी धारणाओं पर आघात करना अधिक श्रेयस्कर होगा जो उसे अपने सहारे टिकायें हैं।" इन्हीं मान्यताओं को लेकर धर्म युद्ध की कहानियां लिखी गई हैं और यही है उनकी सच्ची प्रगतिशीलता।

अमृतराय—

"आज साहित्यकार की यह जिम्मेदारी है कि वह अपने पात्रों और प्रतीकों के जरिये नये युग का आवाहन करे, नये युग की जीत की अनिवार्यता घोषित करे, अर्थात् भविष्य को वर्तमान के पर्दे पर फेंके।" "लेखक भविष्य को वर्तमान के पर्दे पर फेंक पाता है या नहीं फेंक पाता—इससे ज्यादा बड़ी बात यह है कि वह अपने साथ और अपने पाठक के साथ छल नहीं करता।" ये हैं दो उक्तियां, अमृतराय की जिनसे वे अधिक स्पष्ट हो सकते हैं। प्रगतिशीलता आवश्यक है, पर उसे कला का आँचल छोड़ कर नहीं चलना चाहिये। कला के आश्रय से हीन कहानी केवल बौद्धिक-विश्लेषण मात्र रह जायगी।

इनकी कहानियों में रोमांस युग की छाया और प्रगतिशील युग की किरणें आँख मिचौनी करती दिखाई पड़ती हैं—'आह्वान' शीर्षक कहानी ली जा सकती है—"चारों ओर था पहाड़ी प्रदेश जहां स्वस्थ पुरुष के सीने की सी चौड़ी-चौड़ी चट्टानों पर चाँदनी अपनी समस्त कोमल नग्नरूप राशि समेत बेखटके सोई हुई है।" शिरीष के पत्र में—"उस समय उनके (शिरीष की माँ) माध्यम से बोल रहा था—हमारा जीर्ण जर्जर युग, हमारी प्राचीनतम रूढ़ियां, हमारे युग के पोषित अन्धविश्वास।" ये दोनों ही उद्धरण उक्त कथन की सार्थकता स्पष्ट कर देंगे। "कस्बे का एक दिन" में यथार्थ का चित्रण है। तिरंगे कफन में उनकी 'व्यथा का सरगम' 'कोंपले' आदि सुन्दर कहानियां संग्रहीत हैं।

श्री ख्वाजा अहम्मद अब्बास—

ये अंग्रेजी और उर्दू जगत के माने हुए पत्रकार और कहानी-लेखक हैं। हिन्दी में प्रकाशित इनकी कहानियों ने पाठकों के हृदय पर अमिट छाप डाली है। 'अजन्ता की ओर' इनकी कहानियों का पहला संग्रह है, जिसने मनोभावों के चित्रण और अपनी कलात्मकता में ही नहीं, जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति में भी बाजी मार ली है। अजन्ता की गुफाओं में घूमता हुआ निर्मल, छाया चित्र की भाँति उन हिन्दू-मुस्लिम दङ्गों के भयानक और कारुणिक दृश्यों को देखता है जिस कारण वह बम्बई से वहां भाग आया था। इस कहानी व्यक्ति विशेष की ही नहीं, स्वतन्त्रता के पूर्व सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र की मनोवृत्तियों का अद्भुत चित्रण है। कहानी सन्देश विहीन, कोरा मनोरञ्जन करने वाली नहीं है—साम्प्रदाय

एकता के लिये प्रयत्नशील प्रत्येक व्यक्ति को एक अमर सन्देश देता है "लगे रहो—पीढ़ियों तक, आज नहीं तो कल, सौ वर्ष में नहीं तो सहस्र वर्ष में, मानव प्रकृति के पत्थर छिल कर, तरस कर, रूप और सौन्दर्य, कला और विद्या के सुन्दर नमूने अवश्य बनेंगे। एक दो के हाथों नहीं, हजारों, लाखों, करोड़ों सारे मनुष्य मिल कर उसे तरासेंगे।"

'जिन्दगी' शीर्षक कहानी में 'जिन्दगी और मौत का भीषण द्वन्द' एक बच्चे, एक वृद्ध और एक शहर में दिखाया गया है। गुलामों में जीवन की आशा का सन्देश देती है यह कहानी। 'चढ़ाव-उतार' में धनी और गरीब के रोमांस की सापेक्षता, 'राधा' में जीवन दर्शन और 'एक पायली चावल' में एक मजदूर स्त्री का जीवन संघर्ष चित्रित है।

कहानियों की भाषा सरस, सरल और प्रवाहयुक्त है। वातावरण का प्रभावशाली और मोहक अवतरण एक अलौकिक आकर्षण पैदा करने में सक्षम है। कहानियों के पात्र परिचित हैं, पड़ोस की बुढ़िया, मकान बनाने वाले मेमार और शहरों की सड़कें नापने एवं ललचायी दृष्टि से खाद्य पदार्थों की ओर देखने वाला आर्थिक मार से पीड़ित दस साल का मासूम बच्चा। शैली में कलाकार का हृदय और विचारों में प्रगतिशीलता, एक एक कहानी से झलकती है। कहानियां केवल यथार्थ का चित्रण करने वाली नहीं अपितु दलित और पीड़ित वर्ग की असहाया-वस्था में भी आशा का प्रकाश देने वाली हैं।

अन्य प्रगतिशील कलाकारों में देश विभाजन के समय हुये दंगों को आधार बनाकर 'कृष्ण चन्द्र' ने 'हमवहशी है'

संग्रह की कहानियाँ लिखी हैं। 'जन्नत और जहन्नुम' 'बुत जागते हैं' आदि कहानियां प्रभाव शाली हैं। 'मछली जाल' इनकी विभिन्न प्रकार की कहानियों का संग्रह है।

किसानों और मजदूरों में चेतना और दृढ़ता का प्रसार करने वाली कहानियां श्री कृष्णदास ने लिखी हैं। श्री अज्ञेय, पहाड़ी और रांगेय राघव (समुद्र का फेन में) जैसे कलाकार इन नई प्रवृत्तियों में भी योगदान कर रहे हैं।

यद्यपि कहानी की इस एक ही विशिष्ट धारा का मैंने उल्लेख किया है किन्तु अन्य प्रकार की सैकड़ों कहानियां पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं। नवीनतम प्रवृत्तियों में यदि किसी धारा को मुख्यता और नेतृत्व प्राप्त हो सकेगा तो वह यही है, क्योंकि इसी में जीवन को प्रेरणा और स्फूर्ति देने की क्षमता है, वर्तमान समय में पथ प्रदर्शन करने की और भविष्य के लिए आशा का सन्देश देने की भी।

विभिन्न पत्र पत्रिकाओं द्वारा कहानियों की प्रतियोगितायें होती हैं, उन पर विशेष पुरस्कार भी दिये जाते हैं। सं० २००७ (१६५०) की हिन्दी कहानी प्रतियोगिता में अपनी कलात्मक उत्कृष्टता के कारण पुरस्कृत होने वाले कहानीकार श्री ओंकार नाथ श्रीवास्तव, श्री मन्मथनाथ गुप्त, श्री योगेश्वर गुलेरी, श्री विष्णु प्रभाकर, श्री सत्येन्द्रशरत, श्री ए० रमेश चौधरी व रामानन्द दोषी हैं। इनमें प्रथम श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव की कहानी 'बाली और बुन्दे' है। इनके अतिरिक्त अन्य उल्लिखित कहानी-कारों की रचनायें प्रायः पत्र पत्रिकाओं में निकलती रहती

हैं। श्री मन्मथनाथ गुप्त प्रगतिशील कलाकारों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

अपनी लोकप्रियता, जन-जीवन की सन्निकटता एवं कलात्मक उत्कृष्टता तथा प्रभावशीलता के कारण साहित्य के एक प्रमुख अङ्ग के रूप में कहानी का भविष्य अत्यन्त ही उज्ज्वल है।

॥ समाप्त ॥

क

करे

स्थ

पुये